मङ्गल समर्पण

पण्डितजी की डायरी : गुरुदेवश्री की वाणी से

आत्मार्थी मुमुक्षु के लिए पूज्य गुरुदेवश्री का सन्देश

वीतराग वाणी का तात्पर्य : स्व-सन्मुखता

– आत्मा, परद्रव्य का कर्ता या भोक्ता नहीं – ऐसा बताकर परद्रव्य का कर्ता-भोक्तापना छुड़ाकर, स्व-सन्मुखता कराना है।

– विकार का कर्ता कर्म नहीं है – ऐसा कहकर कर्माधीन दृष्टि छुड़ाना है।

– विकार का कर्ता कर्म है, जीव नहीं है; कर्म व्यापक होकर विकार करता है – ऐसा कहकर एक समय के उपाधिभाव से भेदज्ञान कराकर, द्रव्य पर दृष्टि कराना है।

– तत् समय की योग्यता से जो विकार होनेवाला था, वही हुआ है – ऐसा कहकर एक समय के विकार का लक्ष्य छुड़ाकर, दृष्टि को द्रव्य पर लगाना है।

– विकार भी जो क्रमबद्ध में था, वही हुआ है – इस कथन से क्रमबद्धपर्याय के स्वकाल का सत् परिणमन व विकार का अकर्तापना बताकर, ज्ञातास्वभाव की दृष्टि कराना है।

– निर्मलपरिणाम भी क्रमबद्ध हैं – ऐसा कहकर शुद्धपर्याय के एक अंश का लक्ष्य छुड़ाकर, त्रिकाली ध्रुव का लक्ष्य कराना है।

– पर्याय का कर्ता परद्रव्य नहीं है – ऐसा कहकर पर से दृष्टि हटाकर स्वद्रव्य में लगाना है।

– पर्याय का कर्ता स्वद्रव्य भी नहीं है, पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र होती है – इस प्रकार पर्याय की स्वतन्त्रता बताकर, उसका लक्ष्य छुड़ाकर, दृष्टि को द्रव्य-सन्मुख कराना है।

– विकार या निर्मलपर्याय का कर्ता ध्रुव द्रव्य नहीं है, पर्याय ही पर्याय का कर्ता है। ध्रुव द्रव्य, बन्ध-मोक्ष परिणाम का कर्ता भी नहीं है – ऐसा बताकर पर्याय की सन्मुखता छुड़ाकर, ध्रुव की सन्मुखता कराना है।

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

सुखी होने के लिये....

प्रश्न 1. श्रीमद् राजचन्द्रजी ने सुख पाने के लिए क्या बाधक बतलाया है ?

उत्तर – पाँच बातें बतायी हैं — (1) अल्प आयु, (2) अनियत प्रवृत्ति, (3) असीम बलवान असत्संग, (4) पूर्व का प्राय: करके अनाराधकत्व, (5) बलवीर्य की हीनता।

प्रश्न 2. अल्प आयु से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – हे आत्मन ! शरीर का सम्बन्ध अल्प समय का देखने में आता है। औसत आयु बीस वर्ष की है लेकिन तुझे पैड़ियों की चिन्ता है। क्या यह तेरे लिए ठीक है कि तू सबकी चिन्ता करता है ? क्या यह तेरे साथ जाएगा ? विचार कर !

प्रश्न 3. अनियत प्रवृत्ति से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – तुझे साढ़े तीन हाथ जमीन चाहिए, लेकिन बड़े-बड़े महलों की चिन्ता है। आधे सेर अनाज की जरूरत है लेकिन चिन्ता लाखों की है। हे आत्मन ! जरा विचार तो सही ! क्या साथ जाएगा ?

प्रश्न 4. असीम बलवान असत्संग से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – जहाँ देखो वहाँ काम, भोग, बन्ध की बात सुनने को मिलती है। आगे चलो तो पुण्य करो, दान करो, उपवास करो, प्रतिमा लो, भला हो जावेगा – यह सब बातें सुनने को मिलती हैं। अध्यात्म की बात तो सुनने को मिलती ही नहीं है। आत्मा अनादि-अनन्त, किसी से तेरा सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक वस्तु कायम रहते हुए परिणमन करना स्वभाव है। तेरा कल्याण भी तेरे से और बुरा भी तेरे से है — ऐसी बातें सुनने को मिलती ही नहीं; इसीलिए असीम बलवान असत्संग कहा है।

प्रश्न 5. पूर्व का प्राय: करके अनाराधकत्व से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – हे आत्मा ! तू ने अनादि काल से अपनी आत्मा की अनाराधना की है, तू इस समय अनाराधकपने को मिटाकर, आराधकपना प्रगट कर सकता है क्योंकि यहाँ पर जो जीव इस समय उत्पन्न होते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि ही होते हैं

जो परमभक्ति से जिनेन्द्र भगवान का दर्शन नहीं करता तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे वीतरागभाव नहीं रुचता और तिरने का निमित्त नहीं रुचता, परन्तु संसार में डूबने का निमित्त रुचता है। जैसी रुचि होती है, वैसे सम्बन्धों की तरफ रुचि जाये बिना नहीं रहती; इसलिए कहते हैं कि जिसे वीतरागी जिनदेव को देखते ही अन्तर में भक्ति उल्लसित नहीं होती; पूजा-स्तुति का भाव उत्पन्न नहीं होता, वह गृहस्थ तो समुद्र के बीच पत्थर की नाव में बैठा है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

लेकिन वे वर्तमान पुरुषार्थ से मिथ्यादर्शन को समाप्त करके, सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकते हैं; इसलिए तू अपनी आत्मा की आराधना कर; अनाराधकपना मिटा दे।

प्रश्न 6. बलवीर्य की हीनता से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - अपने वीर्य को संसार के कार्यों में जोड़ता है, जबकि उनमें तेरा वीर्य जुड़ना व्यर्थ है। वास्तव में जो जीव अपना वीर्य, आत्मकार्य में नहीं जोड़ता, वह नपुंसक है। जिसको पुण्य की तथा पुण्य फल की भावना है, वह नपुंसक है।

प्रश्न 7. इसलिए अब हम क्या करें ?

उत्तर - हे आत्मन्! तुम यदि पुरुषार्थ करो तो स्वरूप को प्राप्त हो सकते हो। यदि यह समय व्यर्थ में खो दिया, तो अमूल्य जीवन, जो कि आत्मकार्य के लिए मिला है, उसे विषयों में न खोकर, अपने त्रिकाली स्वभाव का निर्णय करके आत्मस्वभाव का अनुभव करके, स्थिरता करके संसार के झगड़ों को समाप्त करके, सच्चे सुख की प्राप्ति कर।

इन्द्रियों से ज्ञान मानना, अज्ञान है क्योंकि ज्ञान तो आत्मा से ही होता है। आत्मा, ज्ञान के लिए इन्द्रिय-प्रकाश आदि बाह्य सामग्री शोधना, अज्ञान है। जिसको मोह महामल्ल जीवित है, वह जीव अपने सुख और ज्ञान के लिए पर की ओर दौड़ता है, यह अज्ञान है।

-आचार्य कुन्दकुन्द

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

इस तरह करो समाधान

प्रश्न 1. किसी ने गाली दी — इस पर पात्र जीव कैसे समाधान करता है ?

उत्तर - (1) गाली क्या है ? 'अ' से लेकर 'ह' तक स्वर-व्यंजन का परिणमन है। इसका कर्ता, भाषावर्गणा है; इसलिए उसने मुझे गाली दी, यह बात झूठ है।

(2) क्या जीव, शब्द को परिणमन करा सकता है ? कभी भी नहीं। गाली देनेवाले ने अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को भूलकर, मात्र राग-द्वेष किया और वह स्वयं द्वेषभाव से दु:खी है तथा भाषावर्गणा के स्कन्धों को शब्दरूप परिणमाना, उसका कार्य नहीं; इसलिए उस पर क्रोध करना व्यर्थ है, क्योंकि दु:खी को दु:खी करना ठीक नहीं।

विचार करो — मुझे गाली दी, तो तुम आत्मा हो या शरीर ?

मैं आत्मा हूँ, तो भाई! गाली देनेवाले ने तुम्हारी आत्मा को देखा नहीं है और शरीर का नाम तुम्हारा नहीं है।

अज्ञानी, शरीर को अपना मान बैठा है; इसलिए दु:खी होता है लेकिन पात्र जीव जानता है कि मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। गाली देनेवाले ने शरीर को लक्ष्य करके गाली दी है, किन्तु शरीर तो मैं नहीं हूँ – ऐसा जानता है।

प्रश्न 2. गाली का, भाव के साथ कुछ सम्बन्ध है या नहीं ?

उत्तर – मात्र निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है; कर्ता-कर्मसम्बन्ध नहीं है।

ज्ञान का परिणमन प्रत्येक समय होता है, जब गाली के ज्ञान का परिणमन है, तब निमित्तरूप से गालीरूप शब्द की उपस्थिति होती ही है — ऐसा सहज निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

अज्ञानी कहता है — 'मुझे गालियाँ नहीं चाहिए', अर्थात् मुझे, गाली सम्बन्धी ज्ञान नहीं चाहिए या ऐसा कहो कि तुझे आत्मा नहीं चाहिए तो उसे तो आत्मघाती महापापी कहते हैं।

ज्ञानी जानता है कि यह सबका स्वतन्त्र परिणमन है, उसे अपने स्वभाव का पता होने के कारण, आकुलता नहीं होती है।

प्रश्न 3. अज्ञानी की आकुलता कैसे मिटे ?

उत्तर – वस्तुस्वरूप को समझने से ही आकुलता मिटेगी। जैसे, कोई मूर्ख, मुर्दा को जिन्दा माने और उसे खिलाना चाहे, पिलाना चाहे तो उसकी आकुलता कभी भी दूर नहीं होगी। मुर्दा को मुर्दा माने, जिलाने से जियेगा नहीं, खिलाने से खायेगा नहीं, तभी शान्ति प्राप्त हो सकती है।

स्वस्वरूप की सच्ची समझ ही सुख और अनसमझ ही दु:ख है।

अज्ञानी सोचता है — मैं जैसा चाहूँ, वैसा पदार्थ परिणमन करे, तब ठीक हो; सब मेरे मित्र हो, दुश्मन न हो; सब मेरी प्रशंसा करे, निन्दा न करे; संसार में मैं महाराजा कहलाऊँ, सब मेरे दास रहे — आदि अगणित इच्छा करके दु:खी होता है। ज्ञानी जानता है — संसार की वस्तुएँ अनादि-निधन है और स्वयं परिणम करना उनका स्वभाव है। आकुलतारहित आत्मा का स्वभाव है; इसलिए वह सुखी रहता है। इच्छा का सद्भाव, दु:ख; इच्छा का असद्भाव, सुख।

प्रश्न 4. श्रीमद् राजचन्द्रजी ने सम्यग्दर्शन के विषय में क्या कहा है ?

उत्तर – जो ज्ञान, अनादि काल से भव हेतुरूप होता था, उसी ज्ञान को जात्यान्तर करके, भव कटीरूप कर दिया — ऐसे सोममूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार हो।

अरे! बड़े-बड़े मुनि भी जिनेन्द्रदेव के दर्शन और स्तुति करते हैं और तुझे ऐसा भाव नहीं आता और एकमात्र पाप में ही रचा-पचा रहता है तो तू भवसमुद्र में डूब जाएगा। भाई! यदि तुझे इस भवदु:ख के समुद्र में डूबना न हो और उससे तिरना हो तो संसार के तरफ की रुचि बदल कर, वीतरागी देव-गुरु की तरफ अपने परिणाम को लगा; वे धर्म का स्वरूप क्या कहते हैं, उसे समझ और उनके कहे हुए आत्मस्वरूप को रुचि में ले; तो भवसमुद्र से तेरा छुटकारा होगा।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

मुनिराज नग्न ही क्यों ?

प्रश्न : मुनि का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

उत्तर : सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित — इन तीनों की एकता में रत, अतीन्द्रिय आनन्द के भोक्ता ही मुनि होते हैं।

प्रश्न : मुनिराज की बाह्य मुद्रा नग्न ही क्यों होना चाहिए ?

उत्तर : 1. अनादि काल से आज तक कोई भी संसारी जीव, स्पर्शन इन्द्रिय के बिना रहा नहीं।

एक तरफ स्पर्शन इन्द्रिय है, दूसरी तरफ अतीन्द्रिय आत्मा। स्पर्शन इन्द्रिय को जीते बिना अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्पर्शन इन्द्रिय रहित, अखण्ड आत्मा की प्राप्ति के लिए, अखण्ड स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना चाहिए। इसको जीते बिना मुनि नहीं हो सकते और मुनि इसको जीतनेवाले हैं; इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए, अर्थात् बाह्य में कपड़े का धागा भी मुनि को नहीं होना चाहिए।

2. रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण — ये चार इन्द्रियाँ खण्डरूप हैं। देखो ! सुनना हो तो कान से होता है, देखना हो तो आँख से होता है, सूँघना हो तो नाक से होता है और चखना हो तो रसना से होता है; इसलिए ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड हैं और स्पर्शन इन्द्रिय सम्पूर्ण शरीर में अखण्ड है। अखण्ड स्पर्शन इन्द्रिय को जीते बिना, अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती; इसलिए अखण्ड आत्मा की प्राप्ति करनेवाले मुनि, नग्न ही होना चाहिए।

3. लोक में कहा जाता है कि रसना इन्द्रिय को जीतना मुश्किल है, किन्तु लोकोत्तर मार्ग में स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना मुश्किल है क्योंकि देखो ! कान दो, काम एक सुनना होता है। आँख दो, काम एक देखना होता है। नाक के छेद दो, काम एक सूँघना होता है। जीभ एक, काम दो होते हैं — एक बोलना और दूसरा चखना। देखो ! ऊपर कहे अनुसार चक्षु, कर्ण, घ्राण दो-दो हैं, काम एक एक है, लेकिन रसना एक, काम दो हैं। इस प्रकार जीभ का चार गुना काम हुआ; इसलिए लौकिक में कहा जाता है कि जीभ (रसना) को जीतना मुश्किल है, किन्तु

केवलज्ञान आदि गुणों का आश्रयभूत निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है; इस प्रकार की रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व, जो कि पहले तपश्चरण की अवस्था में भावित किया था; उसके फलस्वरूप समस्त जीवादि तत्त्वों के विषय में विपरीत-अभिनिवेश से रहित परिणामरूप परम-क्षायिकसम्यक्त्व कहलाता है।

-श्री नैमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव

लोकोत्तरमार्ग में स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना मुश्किल कहा है, क्योंकि नग्न शरीरवाले को विकार होने पर, सबको पता चल जाता है; इसलिए विकार को जीतनेवाले मुनि, नग्न ही होना चाहिए।

4. देखो! जीभ हमको क्या शिक्षा देती है। जीभ अन्दर अन्धेरी गुफा में पड़ी है, उसके ऊपर 32 दाँत पैने खड़े हैं, ऊपर होंठ दो, किवाड़ सरीखे हैं। जीभ ऐसी प्रतिकूल अवस्था में पड़ी है तो भी वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती, अर्थात् वह स्वाद लेने का अपना स्वभाव को नहीं छोड़ती तथा चखने योग्य पदार्थ कटु हों या स्वादिष्ट हों तो भी वह उसका स्वाद लेती है; उसी प्रकार हे आत्मन्! तुझे भी अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को प्रतिकूल या अनुकूल संयोग मिलने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

5. पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण — ये चार विशेषगुण हैं। इनमें से रस की पाँच पर्यायें, गन्ध की दो पर्यायें, वर्ण की पाँच पर्यायों से तो स्कन्धरूप बन्ध होता ही नहीं; स्पर्श गुण की आठ पर्यायें हैं, उनमें से केवल स्निग्ध और रूक्ष पर्याय के कारण परमाणुओं में परस्पर बन्ध होता है; उसी प्रकार आठ कर्मों में से चार अघातिकर्म तो बन्ध के कारण नहीं है; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय का जितना उघाड़ है, वह बन्ध का कारण नहीं है और जितना उघाड़ नहीं है, वह भी बन्ध का कारण नहीं; केवल मोहनीयकर्म ही बन्ध का कारण है, उसमें भी विशेषरूप से दर्शनमोहनीय बन्ध का कारण है। जैसे, परमाणुओं में स्निग्ध-रूक्ष के कारण बन्ध होता है; वैसे ही आत्मा में भी राग-द्वेष ही बन्ध का कारण है; इसलिए राग-द्वेष को जीतना, तभी बनेगा जबकि स्पर्शन इन्द्रिय को जीता जावे; इसलिए मुनि, नग्न ही होना चाहिए।

6. देखो! जब तक दीपक में स्नेह (तेल) रहता है, तब तक वह जलता ही रहता है; उसी प्रकार जब तक जीव में स्नेह (राग) रहेगा, तब तक वह जलता ही रहेगा, अर्थात् कोल्हू के बैल की तरह चारों गतियों में जन्म-मरण के दु:ख ही उठाता रहेगा; इसलिए मुनि रागरहित नग्न ही होना चाहिए।

7. देखो! हाथ पर चिकनाहट लग जावे तो हम साबुन तथा पानी से हाथ धोते हैं तथा जीभ कितने ही चिकने पदार्थ खावे, उसको साबुन तथा पानी से धोने की जरूरत नहीं होती है क्योंकि उसका लूखा स्वभाव है। जीभ अपने लूखे स्वभाव के कारण, चिकनाई को तोड़े बिना नहीं रहती; उसी प्रकार जो जीव अपने

भगवान की मूर्ति में 'ये भगवान हैं' — ऐसा स्थापनानिक्षेप वास्तव में सम्यग्दृष्टि को ही होता है क्योंकि सम्यग्दर्शनपूर्वक प्रमाणज्ञान होता है, प्रमाणपूर्वक सम्यक्नय होते हैं और नय के द्वारा सच्चा निक्षेप होता है। निक्षेप, नय के बिना नहीं; नय, प्रमाण बिना नहीं और प्रमाण, शुद्धात्मा की दृष्टि के बिना नहीं होता।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

त्रिकाली वीतरागी ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेता है, उसको राग-द्वेष उत्पन्न ही नहीं होता, तभी राग-द्वेष का जीतना कहलाता है; इसलिए वीतरागी मुनि, नग्न ही होना चाहिए।

8. देखो! छोटा बच्चा है, नग्न है; यदि वह राजमहल में चला जावे तो रानियाँ उसे स्नेह करती है और बच्चे को नग्न देखकर किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता। यदि जवान विषयासक्त अन्दर चला जावे तो उसका सिर काट दिया जाता है; उसी प्रकार मुनि को स्वयं तो विकार उत्पन्न नहीं होता है, इतना ही नहीं, बल्कि मुनि को देखकर किसी को विकार नहीं होता है; इसलिए मुनि की नग्नता निर्दोषता की सूचक है।

9. पाँचों इन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित, आरम्भ-परिग्रह रहित, ज्ञान-ध्यान में लवलीन, वही तपस्वी गुरु / मुनि प्रशंसनीय है।

॥ समस्त वीतरागी सन्तों की जय हो ॥

देखो तत्त्वविचार की महिमा!
तत्त्वविचाररहित देवादिक की प्रतीति करें, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करें, व्रतादि पाले, तपश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नाही और तत्त्वविचारवाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

ज्ञेय से ज्ञान नहीं.....

प्रश्न 1. क्या ज्ञेय के कारण ज्ञान होता है ?

उत्तर - कभी भी नहीं। एक शिकारी था, उसकी तीन पत्नियाँ थीं। एक ने कहा कि - 'मुझे प्यास लगी है, पानी लाओ।' दूसरी ने कहा कि - 'बिछाने के लिए मृगचर्म लाओ।' तीसरी ने कहा कि - 'मुझे गायन सुनाओ।'

उसने तीनों को एक ही उत्तर दिया कि 'सरो नाथी'। यह प्राकृत का शब्द है। इस शब्द से तीनों का मतलब हल हो गया।

पहली ने समझा कि 'सर: न अस्ति', तालाब नहीं है, पानी कहाँ से लाऊँ ?

दूसरी ने समझा कि 'सरो: न अस्ति', बाण नहीं है, मृगचर्म कहाँ से लाऊँ ?

तीसरी ने समझा कि 'स्वर: न अस्ति', मेरा गला ठीक नहीं, गायन कैसे सुनाऊँ ?

विचारये — क्या शब्द से ज्ञान हुआ ? नहीं; तीनों को अपने-अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञान हुआ। यदि उस शब्द के कारण ज्ञान होता तो तीनों को एक सा ही ज्ञान होना चाहिए था, सो हुआ नहीं। इससे सिद्ध होता है, शब्द से ज्ञान नहीं; ज्ञान, ज्ञान से आता है।

2. अनादि काल से तीर्थंकर-गणधरादि, संसार के समस्त प्राणियों को डंके की चोट से बता रहे हैं कि 'आत्मा का कार्य, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है; पर में आत्मा किंचित्मात्र भी कुछ नहीं कर सकता, न किया है, और न कर सकेगा' तो क्या सबकी आत्मा में यह बात बैठती है ? आप कहेंगे कि सबकी आत्मा में नहीं, क्योंकि शब्दों से ज्ञान नहीं होता। ज्ञान, मात्र ज्ञान से ही होता है; अत: सिद्ध हुआ कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

3. तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि गर्जनारूप खिरती है। बारह प्रकार की सभा में क्या सब जीवों का एकसा ज्ञान होता है ? नहीं होता। जिस जीव के जितना ज्ञान का उघाड़ होता है, उतना-उतना भगवान की दिव्यध्वनि पर आरोप आता है। भगवान की वाणी सुनकर गणधर अन्तर्मुहूर्त में ग्यारह अंग, चौदह पूर्व की रचना कर देता है। क्या वह दिव्यध्वनि से हुआ ? नहीं, परन्तु गणधर के मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्ययज्ञान का उघाड़ है, उससे हुआ। वाणी से ज्ञान नहीं और जब तक वाणी की ओर ध्यान रहेगा, तब तक ज्ञान की भी प्राप्ति नहीं होगी; इसलिए सिद्ध हुआ कि वाणी से ज्ञान नहीं; ज्ञान से ही ज्ञान होता है।

4. पाँचों इन्द्रियाँ, छठा मन, मन-वचन-काय, आयु, श्वासोच्छवास — यह सब पुद्गल स्कंधों की पर्यायें हैं, इनमें ज्ञान नहीं हैं। जिसमें ज्ञान नहीं, उससे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती; इसलिए सिद्ध हुआ ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

5. हमारे सामने आम रखा है, जिस समय रंग का ज्ञान करते हैं, उस समय रस का नहीं और जिस समय रस का करते हैं, उस समय बाकी गन्धादि का नहीं। आम में स्पर्श रस, गन्ध, वर्णादि सब है; यदि उससे ज्ञान होता तो चारों का एक साथ ज्ञान होना चाहिए, अत: सिद्ध हुआ ज्ञेय से ज्ञान नहीं; ज्ञान से ही ज्ञान प्राप्त होता है।

6. सामने अमरूदों का बाग है, पानी बाग में दिया गया। पेड़ के ज्ञान का उघाड़ स्पर्श का ही है और पानी में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णादि सब है लेकिन पेड़ को उसका ज्ञान नहीं, इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

अरे भाई! तुझे आत्मा के तो दर्शन करना नहीं आता और आत्मा के स्वरूप को देखने हेतु दर्पण के समान ऐसे जिनेन्द्रदेव के दर्शन भी तू नहीं करता तो तू कहाँ जाएगा ? भाई! जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे - यह तेरा जैनपना कैसा ?

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगाये, तब स्वयमेव ही मोह का अभाव होने पर सम्यक्त्वादिरूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है; इसलिए मुख्यता से तो तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगाने का पुरुषार्थ करना।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

7. सामने लोकालोक है, हमें ज्ञान क्यों नहीं होता ? केवली को क्यों होता है ? विवेकवान को विचारने से पता चलता है कि केवली के ज्ञान के उघाड़ के कारण ही ज्ञान होता है; लोकालोक के कारण नहीं; इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

8. सामने आदमी सो रहा है, उसे देखकर दूसरा आदमी कहता है कि इसके सिर पर कितने मच्छर उड़ रहे हैं। विचारियेगा — है तो उसके लम्बे-लम्बे बाल; ज्ञान किया मच्छरों का। यदि ज्ञेय के कारण ज्ञान होता तो बालों का ही ज्ञान होना चाहिए था, मच्छरों का नहीं; अत: सिद्ध हुआ कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

9. रात्रि को अन्धेरे में जा रहे हैं, लकड़ी के ठूठ को आदमी मान लिया और दु:खी हो रहे हैं। यदि ज्ञेय के कारण ज्ञान होता तो लकड़ी के ठूठ को आदमी नहीं मानता, इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

10. अध्यापक 50 विद्यार्थियों को एक साथ पढ़ाता है। किसी को जैसा वह बताता है, वैसा का वैसा; किसी को ज्यादा, किसी को कम, तथा किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं।

11. किसी ने गाली दी, क्या गुस्सा उसके कारण आया ? विचार करते हैं—

(i) गाली क्या है ? 'अ' से लेकर 'ह' तक स्वर-व्यंजनों की स्कन्धरूप पर्याय है, इसमें ज्ञान नहीं।

(ii) गाली देने का भाव करनेवाला, पुद्गल स्कन्धों को शब्दरूप परिणमन नहीं करा सकता; इसलिए वह भी उसका जिम्मेदार नहीं। जैसे, हमारे घर पर कोई आया ही नहीं और कहे कि वह हमारे सौ रुपया चोरी करके ले गया। जो कि गलत है, जबकि कोई आया ही नहीं तो यह प्रश्न ही नहीं। गाली मुझे दी - वह गालियाँ मुझे देता नहीं क्योंकि शरीर और नाम पर है - ऐसा निर्णय करे तो गुस्सा नहीं आवेगा।

अनादि काल से ज्ञेय के कारण ज्ञान होता है — ऐसी खोटी बुद्धि ही दु:ख का कारण हो रही है; इसलिए याद रखना चाहिए कि ज्ञानगुण में से ज्ञान की पर्याय आती है; परज्ञेय के कारण नहीं।

॥ ज्ञेय-ज्ञायक स्वरूप का रहस्य बतलानेवाले
पूज्य गुरुदेव की जय हो! जय हो!!॥

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

शास्त्राभ्यास कैसे करना ?

प्रश्न 1. शास्त्राभ्यास किसलिए और कैसे करना चाहिए, कैसे नहीं ?

उत्तर – एक कारीगर ने तीन पुतलिया बनाई, तीनों देखने में एक सी लगती थी, वह उनको बेचने के लिए राजा के दरबार में पहुँचा। राजा ने मन्त्री से तीनों का मूल्य लगाने के लिए कहा, किन्तु मन्त्री की समझ में नहीं आया। उसने राजा से आठ दिन का समय माँग लिया और कहा कि आठ दिन बाद इन पुतलियों की कीमत बताई जाएगी। मन्त्री को परेशान होते हुए आज सातवाँ दिन हो गया, उसे कुछ समझ में नहीं आया।

उसने एक सलाई एक पुतली के कान में डाली, वह आर-पार निकल गयी; दूसरी के कान में डाली तो वह मुँह से निगल गयी; तीसरी के कान में डाली तो वह अन्दर ही समा गयी। मन्त्री बड़ा प्रसन्न हुआ।

राज दरबार में आकर मन्त्री ने तीसरी पुतली की कीमत एक लाख रुपया लगायी, बाकी दो की एक कानी फूटी कोड़ी भी नहीं। मन्त्री से यह बात स्पष्ट करने को कहा गया कि जब तीनों पुतलियाँ एक सी हैं, तब दो की कीमत कुछ भी नहीं, तीसरी की एक लाख – ऐसा क्यों ?

मन्त्री ने कहा — नम्बर एक पुतली से जो कुछ कहा जावे, यह तभी दूसरे कान से निकाल देती है और नम्बर दो की पुतली जो सुनती है, वह दूसरों को सुना देती है। नम्बर तीन पुतली जो सुनती है, अपने में पचा लेती है। यह तो हुआ दृष्टान्त। इसी प्रकार —

1. जो जीव, शास्त्र पढ़ता है, या सुनता है; इधर सुना-उधर निकाल दिया या पता ही नहीं क्या सुना या क्या पढ़ा ? – यह व्यर्थ है।

2. जो जीव, शास्त्र इसलिए पढ़ता या सुनता है कि मैं सुनकर दूसरों को बताऊँ, लोग मेरा मान / आदर करें तो वह भी व्यर्थ है।

3. जो जीव, शास्त्राभ्यास अपने कल्याण के लिए करता है; जो पढ़ता-सुनता है, उसे अपने जीवन में घटाता है, वह ही धन्य है।

जैसा, वस्तुस्वरूप है, वैसा का वैसा निर्णय करने से मन्दकषाय हो जाती है

जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है, वह घर धन्य है; इसके बिना तो घर, श्मशानतुल्य है। अरे! वीतरागी सन्त अधिक क्या कहें ? ऐसे धर्मरहित गृहस्थाश्रम को तो हे भाई! समुद्र के गहरे पानी में तिलाञ्जलि दे देना, नहीं तो यह तुझे डुबो देगा।

मङ्गल समर्पण

और विशेष पुरुषार्थ करें तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति भी हो जाती है; इसलिए शास्त्राभ्यास हमेशा अपने कल्याण के निमित्त ही कार्यकारी है।

मैं शास्त्राभ्यास करूँ, उसके बदले मुझे मान मिले और मेरी आजीविका चले – यह पापभाव है।

मङ्गल समर्पण

इसका कर्तव्य तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है, इसी से दर्शनमोह का उपशम तो स्वयमेव होता है। उसमें जीव का कर्तव्य कुछ नहीं।

– **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल**

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

इतना जानकर.....

प्रश्न – संसार में कितने प्रकार का अस्तित्व पाया जाता है और हमें इसके जानने से क्या फायदा ?

उत्तर – संसार में चार प्रकार का अस्तित्व पाया जाता है। इसके जानने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। चार प्रकार का अस्तित्व :—

1. परपदार्थ का अस्तित्व;
2. विकारीपर्याय का अस्तित्व;
3. अपूर्ण तथा पूर्ण शुद्धपर्याय का अस्तित्व; और
4. त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का अस्तित्व।

1. परपदार्थ का अस्तित्व – इसका दूसरा नाम जड़ का अस्तित्व भी है। मेरी आत्मा के अलावा जो अन्य पदार्थ हैं, वह सब पर हैं।

जिस जीव को अपना कल्याण करना हो, उसे परपदार्थ के अस्तित्व से अपनी दृष्टि उठा लेनी चाहिए।

2. विकारीपर्याय का अस्तित्व — अर्थात्, अशुभभावरूप विकारीपर्याय का अस्तित्व कहते हैं। तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध जिस भाव से होता है, वह शुभभाव भी विकारीभाव है। दया, दान, पूजा आदि भाव भी विकारीभाव है। जिसे अपना भला करना हो, उसे शुभ अच्छा, अशुभ बुरा —

इससे दृष्टि उठाकर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के अस्तित्व पर ध्यान देना चाहिए, तभी कल्याण की कोई सूरत दृष्टिगोचर होगी।

3. अपूर्ण तथा पूर्ण शुद्धपर्याय का अस्तित्व — अपूर्ण शुद्धपर्याय और पूर्ण शुद्धपर्याय, दोनों पर्याय हैं। यदि पर्याय की ओर दृष्टि दे तो राग की उत्पत्ति होती है। इस पर भी अपने अन्दर पूर्ण शुद्ध क्षायिकपर्याय है नहीं और जिसको पूर्ण शुद्धपर्याय प्रगट हो गयी है, वे पर हैं। जिसे परपदार्थ के अस्तित्व में अलग कर दिया है। अब, जिसे अपना कल्याण करना हो, उसे अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय से भी दृष्टि उठा लेनी चाहिए।

विचारो — पहिले बोल में मात्र आत्मा रहा; दूसरे बोल में शुभ-अशुभभाव भी पृथक हो गये; तीसरे बोल में एक समय की अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय से भी दृष्टि उठावे, तभी आत्म-कल्याण का कार्य बनने का अवसर आता है।

प्रश्न - अब क्या करना ?

उत्तर - अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का जो अस्तित्व है, उस पर दृष्टि देने से ही आत्मा का कल्याण हो सकता है। अनादि काल से ओर तो सब पर दृष्टि दी है; मात्र अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पर आज तक इस जीव ने दृष्टि नहीं दी; इसलिए यह संसार में भ्रमण कर रहा है।

जिस जीव को अपना कल्याण करना हो, वह तीनों प्रकार के अस्तित्व से ध्यान हटाकर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि लगाये, तभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होकर निर्वाण की प्राप्ति होती है।

1. जब तक दो द्रव्यों की एकताबुद्धि रहती है, तब तक स्वभावभाव की एकत्वबुद्धि नहीं होती।

2. जब स्वभावभाव की एकत्वबुद्धि हो जाती है, तब दो द्रव्यों की एकत्वबुद्धि मिट जाती है।

1. पर का अस्तित्व = संयोग - अजीवतत्त्व

2. विकारीपर्याय का अस्तित्व = संयोगीभाव - आस्रव-बन्धतत्त्व

3. अपूर्ण शुद्धपर्याय का अस्तित्व = स्वभाव के साधन-संवर निर्जरातत्त्व

4. पूर्ण शुद्धपर्याय का अस्तित्व = सिद्धत्व / मोक्षतत्त्व

5. त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का अस्तित्व = स्वभाव त्रिकाली / जीवतत्त्व

!! जय हो! त्रिकाली स्वभाव की जय!!

अरे! सर्वज्ञ को पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो गयी; वैसी परमात्मदशा से जिसे प्रेम हो, उसे उनके दर्शन का उल्लास आये बिना कैसे रहे ? वह तो प्रतिदिन भगवान के दर्शन करके अपने परमात्मदशारूप ध्येय को प्रतिदिन ताजा रखता है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव-बन्ध है और मिथ्यात्व का अभाव सम्यक्त्व, संवर-निर्जरा तथा मोक्ष है।

- पण्डित बनारसीदास

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

मोहे सुन-सुन आवे हांसी....

प्रश्न 1. अनादि काल की भूल कैसे दूर हो ?

उत्तर - जो जीव, तीनों काल के भावों को, संयोगों को ज्ञान का ज्ञेय जानता है, मानता है, यह सबसे बड़ी तपस्या है। इसी से अनादि काल की भूल दूर हो सकती है।

जहाँ भूल है, वहाँ भूल को देखना, यही भूल को मिटाने का उपाय है।

मुँह पर दाग है, सामने शीशा है, यदि दाग मिटाने के लिए शीशे को रगड़े तो क्या मुँह का दाग दूर हो जावेगा ? कभी भी नहीं। जहाँ पर दाग है, वहीं से हटाये, तभी दाग दूर हो सकता है।

सामने शीशा है, यदि हमारा मुँह टेड़ा है तो शीशे में टेड़ा दिखायी देगा। उसमें शीशे का दोष नहीं। यदि हम अपने मुँह को टेड़ा नहीं देखना चाहते तो उसका उपाय अपना मुँह सीधा कर लेना - यही है।

इसी प्रकार गलती तो हमारे में है; देखते हैं कर्मादि परद्रव्यों में, यह यह ठीक नहीं है।

एक बाई जल भरने गयी। रास्ते में कलशा गिर गया। उसमें गड्ढा हो गया। यदि उस गड्ढे को ऊपर उठाने के लिए ऊपर से हथोड़ा मारे तो वह ऊपर नहीं आवेगा, बल्कि बढ़ता चला जायेगा; मात्र उसका उपाय अन्दर से चोट मारे तो ठीक हो सकता है।

इसी प्रकार अनादि काल से जीव, सुखी होने के लिए संयोग तथा संयोगीभावों की इच्छा करता है तो इससे जीव को कभी भी शान्ति नहीं होगी; केवल अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेकर, अपनी आत्मा का अनुभव-ज्ञान-लीनता करे, तभी अनादि काल की भूल दूर हो सकती है। सुख है अपने में, ढूँढ़ता है पर में। 'मोहे सुन सुन आवे हाँसी, पानी में मीन प्यासी'

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

धर्मप्राप्ति का पात्र कब ?

प्रश्न 1. जीव को धर्म प्राप्ति का पात्र कब कहा जा सकता है ?

उत्तर – 1. जगत में जो जो बातें और वस्तुएँ महिमावान गिनी जाती है, ऐसा शोभायमान ग्रह आदि आरम्भ, अर्थात् कषाय की प्रवृत्तियों में चातुर्य।

2. अलंकारादि परिग्रह, अर्थात् कषायों के साथ एकत्वबुद्धि।

3. लोकदृष्टि का विचक्षणपना (चतुर)।

4. लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना (लोग जिसे महात्मा कहे।)

जब तक जीव इन चारों को लबालब भरा प्रत्यक्ष जहर का प्याला नहीं माने, तब तक आत्मा का किंचित्मात्र भी कल्याण नहीं हो सकता है।

प्रश्न 2. 'शोभायमान ग्रह आदि आरम्भ' प्रथम बोल का स्पष्ट खुलासा कीजिए ?

उत्तर – शोभायमान ग्रह आदि आरम्भ, अर्थात् कषायों की प्रवृत्तियों में होशियार, यह बाहर की वस्तु है। कषाय की प्रवृत्ति को आरम्भ कहते हैं। कुछ करना-करना आदि प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है।

बड़े-बड़े कारखाना चलाना, बड़ी दुकान चलाना – यह तो अल्प आरम्भ है। करूँ, करूँरूप कषाय की प्रवृत्ति, यह सबसे महान आरम्भ है। जिस प्रकार कोई हलाहल जहर को पी ले, वह बच नहीं सकता; उसी प्रकार अनादि काल से शुभभाव की प्रवृत्ति को अच्छा माने, उसका कभी भी कल्याण नहीं हो सकता है, क्योंकि मिथ्यात्व, सातों व्यसनों से भी महा भयंकर पाप है। शुभ अच्छा, अशुभ बुरा — ऐसी मान्यता जब तक जीव में रहती है, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं है।

प्रश्न 3. 'अलंकारादि परिग्रह' दूसरे बोल का स्पष्ट खुलासा कीजिए ?

उत्तर – 'अलंकारादि परिग्रह', अर्थात् कषायों के साथ एकत्वबुद्धि। कपड़ा, धन, गहना, मोटर गाड़ी आदि परिग्रह कहा जाता है लेकिन 'इच्छा ही परिग्रह है'। समस्त प्रकार से ग्रासीभूत किया जावे (ग्रहण किया जावे) कषाय के साथ एकत्वबुद्धि। दया, दान, पूजा का भाव हितकारी है, मददगार है; दुनिया के

अरे! तीर्थङ्करों का विरह, महान सन्त-मुनियों का भी विरह!! — ऐसे काल में जिनप्रतिमा के दर्शन से भी धर्मीजीव, भगवान के स्वरूप को याद करता है। जिसे वीतराग जिनमुद्रा को देखने की उमङ्ग न हो, वह जीव, संसार की तीव्र रुचि को लेकर संसारसागर में डूबनेवाला है। वीतराग का भक्त तो वीतरागदेव का नाम सुनते ही और दर्शन करते ही प्रसन्न हो जाता है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

अज्ञानी लोग दया, दान, पूजा के भाव को हितकारी मानते हैं, जब तक इसे प्रत्यक्ष जहर का प्याला न जाने, तब तक कल्याण नहीं हो सकता क्योंकि शुभभाव भी आस्रव-बन्ध ही है। जो शुभभाव को अच्छा मानता है, उसका संसार भ्रमण बढ़ता है और दु:ख भोगता है; वह धर्म प्राप्त करने का पात्र भी नहीं कहला सकता है।

प्रश्न 4. 'लोकदृष्टि का विचक्षणपना, अर्थात् चतुर' तीसरे बोल का स्पष्ट खुलासा कीजिए?

उत्तर - लोकदृष्टि का विचक्षणपना, अर्थात् चतुर; आत्मदृष्टि का नहीं, ज्ञानदृष्टि का नहीं परन्तु लोक की दृष्टि में जो चतुर है, उस चतुरपने को जो प्रत्यक्ष हलाहल जहर का प्याला न माने, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं हो सकता।

यह आदमी लोगों के सारे काम बड़ी होशियारी से पार उतार देता है।

एक आदमी 50 रुपया लेकर अफ्रीका गया और 10 साल बाद घर आया, पचास लाख रुपया कमाकर लाया, उसे संसार चतुर कहता है। जब तक संसार की चतुराई को प्रत्यक्ष हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक धर्म पाने का पात्र नहीं है।

दुनिया में जो अपने को चतुर मानता है, वह स्वयं दु:ख पाता है। कुछ चोर चोरी करने जा रहे थे। रास्ते में एक बढ़ई मिला। उसने कहा — मुझे भी अपने साथ मिला लो। जब चोरी करने गये, तब बढ़ई ने सोचा कि मैं ऐसा कार्य करूँ जिससे यहाँ का मालिक मुझे याद रखे। उसने आरी से दरवाजे में कंगूरे काटने शुरु किये। बाद में अन्दर जाने के लिए पैर अन्दर रखा तो अन्दर से मालिक ने उसके पैर खींचे और बाहर से चोरों ने खींचा। विचारो - अपनी चतुराई अपने को दु:ख दे गयी। इसी प्रकार शुभभाव की एकत्व की चतुराई, अनन्त दु:ख का कारण है।

मैं जानता हूँ, समझता हूँ — यह शास्त्रीय अभिनिवेश, अर्थात् मैं शास्त्र जानता हूँ, समझता हूँ — यह आत्मकल्याण में बड़ा भारी विघ्न करनेवाला है।

गुरुदेव की वाणी सुनी और कहे - यह तो मैं जानता हूँ।

गणधरदेव, चार ज्ञान के धारी धर्म वजीर भी, जो एक अन्तर्मुहूर्त में ग्यारह अंग चौदह पूर्व की रचना कर देते हैं, वह केवली के ज्ञान के सामने अपने ज्ञान को कुछ भी नहीं गिनते हैं। भगवान की वाणी चार बार खिरती है और एक बार छह घड़ी तक दिव्यदेशना संसार के दुखित प्राणियों के निमित्त होती है, अर्थात् चौबीस

सिद्धान्त में मिथ्यात्व को ही पाप कहा है; जब तक मिथ्यात्व रहता है, तब तक शुभाशुभ सर्व क्रियाओं को अध्यात्म में परमार्थत: पाप ही कहा जाता है।

-पण्डित जयचन्द छाबड़ा

घण्टों में साढ़े नौ घण्टे से कुछ ज्यादा समय तक वाणी खिरती है, उसमें धर्म वजीर गणधर की बराबर हाजरी होती है और हम कहते हैं कि हमने समझ लिया! कुछ श्लोक याद कर लिये!! जब तक जीव में परलक्ष्यी ज्ञान, अर्थात् शास्त्रीय अभिनिवेश रहता है, तब तक वह अपना कल्याण नहीं कर सकता और वह धर्म प्राप्त करने का पात्र भी नहीं कहला सकता है।

प्रश्न 5. 'लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना' – चौथे बोल का स्पष्ट खुलासा करो?

उत्तर – लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना, अर्थात् लोग जिसे महात्मा कहे।

यह सात प्रतिमाधारी है, यह ग्यारह प्रतिमाधारी है, यह मुनि अट्ठाईस मूलगुणों का अखण्ड पालन करता है, यह महीने का उपवास करता है, यह दिन में तीन बार सामायिक करता है, यह करोड़ों रुपयों का दान करता है, यह बड़ा दयालु है, यह अपने पास एक वस्त्र भी नहीं रखता है, संसार की दृष्टि में यह महात्मा माना जाता है। जब तक दृष्टि में अपने कल्याण में इन सबको हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक वह धर्म पाने का पात्र नहीं कहला सकता है।

प्रश्न 6. आप तो सभी बातों का निषेध करते हैं, तब फिर हम क्या करें?

उत्तर – संसार, अनादि काल से परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास में ही अपना कल्याण होना मानता है; इसलिए जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास में दृष्टि रहेगी, वह धर्म पाने का अधिकारी नहीं है।

(1) जगत में जो-जो बातें और वस्तएँ महिमावान गिनी जाती है, ऐसा शोभायमान ग्रह आदि आरम्भ, (2) अलंकारादि परिग्रह, (3) लोकदृष्टि का विचक्षणपना, (4) लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना — इन चारों में जरा भी किसी भी प्रकार की मिठास रहेगी, तब तक उसके मिथ्यात्व का नाश नहीं होगा, चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि बन जावे, वह संसार का ही पात्र रहेगा; इसलिए आत्मार्थी जीव को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बनने के लिए परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास से अपना लक्ष्य हटाकर, अपने त्रिकाली ज्ञायक पारिणामिकभाव का ही आश्रय लेना चाहिए, ताकि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर, सर्वज्ञ और सर्वदर्शीपने का अनुभव हो जावे।

जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी, तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती और जब तक पर्याय में पुण्य-पाप का भाव होवे, तब तक सर्वज्ञ, सर्वदर्शी नहीं बन सकता है।

जिस प्रकार सज्जन विनयवन्त पुत्र, रोज सवेरे माता-पिता के पास जाकर विवेक से चरणस्पर्श करते हैं; उसी प्रकार धर्मीजीव, प्रभु के पास जाकर, बालक जैसे होकर, विनय से प्रतिदिन धर्मपिता जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते हैं, उनकी स्तुति-पूजा करते हैं; मुनिवरों को भक्ति से आहारदान देते हैं। ऐसे वीतरागी देव-गुरु की भक्ति के बिना जीव, मिथ्यात्व की नाव में बैठकर चार गति के समुद्र में डूबता है और बहुमूल्य मनुष्यजीवन को नष्ट कर डालता है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

इनसे सीखें.....

प्रश्न 1. चन्दन, गन्ना, सोना, बावना चन्दन, लकड़ी और लकड़ी के छोटे टुकड़े से हमें क्या शिक्षा मिलती है ? प्रत्येक को पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप से समझाओ।

उत्तर - चन्दन - चन्दन को घिसो तो सुगन्ध देता है; चन्दन पर कुल्हाड़ी मारो तो वह कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना देता है; चन्दन को जलाओ, तब भी वह अपनी सुगन्धी को नहीं छोड़ता है। तब हे आत्मा ! तुम्हें कोई चन्दन के समान घिसता नहीं, काटता नहीं, और जलाता नहीं; तब तुम अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव को क्यों छोड़ते हो ?

चन्दन पर कैसी-कैसी मुसीबतें आने पर भी, वह अपना सुगन्धी का कार्य नहीं छोड़ता; उसी प्रकार हे आत्मा ! तू अपने ज्ञायकस्वभाव को साथ रखे तो संसार की कितनी ही प्रतिकूलता क्यों न हो, तुझे दु:खी नहीं कर सकती हैं।

चन्दन पर जैसी-जैसी मुसीबतें आती हैं, वैसी तुझ पर नहीं; इसलिए तू अपने ज्ञायकस्वभाव को पहिचान।

गन्ना - गन्ने को कोल्हू में पेलकर रस निकालते हैं। रस को खूब ओटा करके गुड़ बनता है, वह हमेशा मीठा ही लगता है।

हे आत्मा ! तुम्हें गन्ने के समान पेलता नहीं, ओटाता नहीं, तब तुम व्यर्थ में क्यों आकुलित होते हो। इसलिए हे आत्मन् ! तुम अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लो तो हमेशा गन्ने के समान मीठा ही स्वाद (अतीन्द्रिय आनन्द) आवेगा और चारों गतियों का भव-भ्रमण मिट जावेगा।

गन्ना हमें शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मैं अपने मीठेपने को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर नहीं छोड़ता, उसी प्रकार तुम भी अपने ज्ञाता-दृष्टा कार्य को कितनी ही प्रतिकूलताएँ आने पर मत छोड़ो !

सोना - सोने को गलाओ, तपाओ, तो वह मैल को छोड़ देता है; उसी प्रकार हे आत्मा ! तुम्हें कोई सोने के समान गलाता, तपाता तो नहीं, फिर तुम क्यों आकुलित होते हो ? नहीं होना चाहिए। सोना सुनार से कहता है कि - श्लोक —

मिथ्यात्वसम्बन्धी बन्ध, जो कि अनन्त संसार का कारण है, वहीं यहाँ प्रधानतया विवक्षित है; अविरति आदि से जो बन्ध होता है, वह अल्प स्थिति-अनुभागवाला है; दीर्घ संसार का कारण नहीं है।

- पण्डित जयचन्द छाबड़ा

हे हेमकर, पर दुःख विचार मूढ़।
किं मां मुहुः क्षिपसि वार शर्तान बन्हौ
दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणाति रेको,
लाभः परं खलु मुखे तव भस्म पातः॥

सोना, सुनार से कहता है कि हे सुनार! तुम मुझे बार-बार अग्नि में क्यों तपाते हो? तुम मुझे चाहे कितनी ही बार अग्नि में तपाओ, उससे मेरे में तो शुद्धि की वृद्धि ही होती है लेकिन तुझे मुँह में राख के अलावा कुछ भी लाभ नहीं मिलेगा।

सोने से हमें शिक्षा मिलती है कि हे आत्मा! जिस प्रकार सोने पर मुसीबतें आने पर वह शुद्ध हो जाता है; उसी प्रकार सांसारिक प्रतिकूलता आने पर, तुम्हें शुद्धोपयोग की प्राप्ति होनी चाहिए।

बावना चन्दन - गरम उबलते हुए तेल में यदि नारियल डाला जाये तो उसके तत्काल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, और जलकर खाक हो जाता है लेकिन उस उबलते हुए तेल में जरा-सा बावना चन्दन डाल दिया जाय तो उसी समय वह शीतल हो जाता है। उसी प्रकार हे आत्मा! जब तुम पर का सहारा लेते हो, तब तुम नारियल के समान अत्यन्त दुःखी होते हो और जब तुम अपने बावना चन्दनरूपी त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेता हो, तब क्षणभर में अनन्त संसार का ताप समाप्त हो जाता है। यह जीव, अनादि काल से पर के ताप से दुःखी होकर जल रहा है, इसको एक अपना स्वभाव ही संसार से पार होने में महामन्त्र है। बावना चन्दन शिक्षा देता है कि मैं जरा-सा, इतने भरे तेल को शीतल बना देता हूँ, तब हे आत्मा! क्या तुम अनादि काल के ताप को एक क्षण भर में शान्त नहीं कर सकते? कर सकते हो। यदि यह आत्मा एक क्षण के लिए अपने स्वभाव को जान ले तो अनन्त जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। कहा है —

क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषयिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥

लकड़ी - एक मनुष्य, लकड़ी को देखकर कहने लगा कि हे लकड़ी! क्या तुझे पता है कि तेरा तरने का स्वभाव है, परन्तु तू लोहे का साथ करेगी तो डूब जावेगी।

इस पर लकड़ी बोली कि अरे मनुष्य! हम तो तिरे या डूबे; इसमें हमको

धर्म की रुचिवाले को चौबीस घण्टे व्यापार-धन्धे की ऐसी तीव्र लोलुपता नहीं होती कि शास्त्र पढ़ने का समय भी नहीं मिले। वह हमेशा शास्त्र-स्वाध्याय करने के लिए अमुक निवृत्ति लेता है। अरे! इन पापभावों में जितना कम समय दिया जा सके, उतना अच्छा है और शास्त्र-स्वाध्याय, चिन्तन-मनन इत्यादि में जितना अधिक समय लगे, उतना उत्तम है - ऐसी भावना उसे होती है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

संसार का कारण मिथ्यात्व ही है; इसलिए मिथ्यात्व सम्बन्धी रागादि का अभाव होने पर, सर्व भावास्रवों का अभाव हो जाता है, यह यहाँ कहा गया है।

– पण्डित जयचन्द छाबड़ा

कोई भी दु:ख-सुख नहीं; इसलिए तू हमारी चिन्ता किसलिए करता है ? तेरा अपना तिरने का स्वभाव है, उसकी क्या तुझे खबर है ? तेरा तिरने का स्वभाव होने पर भी, पर का संग मानकर संसार समुद्र में क्यों डूब रहा है ? क्यों दु:खी हो रहा है ? इसलिए तू हमारी चिन्ता छोड़ और पर की भी चिन्ता छोड़कर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभावरूप ज्ञानस्वभाव को पर से पृथक् जानकर, उसी की भावना कर! जिससे तू संसार समुद्र से पार होकर सिद्ध परमात्मा बन जावेगा।

जैसे, लकड़ी अपने तिरने स्वभाव को नहीं छोड़ती; उसी प्रकार हमें अपने स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।

लकड़ी का छोटा टुकड़ा – नदी, नहर या समुद्र में लकड़ी का टुकड़ा पड़ा हो, कैसी ही प्रतिकूल तरंगे उठ रही हो परन्तु लकड़ी का टुकड़ा कभी भी डूबता ही नहीं; इसी प्रकार जो आत्मा अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय ले लेता है; संसार की कितनी ही प्रतिकूलता क्यों न हो, उसे डिगा नहीं सकती। वह हर समय कुन्दन ही रहेगा।

लकड़ी का छोटा-सा टुकड़ा हमें शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मुझे लाखों तूफान आने पर भी मैं अपने तिरने का स्वभाव नहीं छोड़ता; उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को अपने ज्ञायकस्वभाव को जानकर प्रतिकूल संयोगों या विकारीभावों से कभी भी विचलित नहीं होना चाहिए।

चीनी का नारियल- जैसा नारियल होता है, वैसा ही चीनी का नारियल हो और उसे खावें तो उसमें मिठास ही मिठास आती है और आत्मा तो सम्पूर्ण अमृत की डकार जैसा है, उसके चारों तरफ अमृत तत्त्व की ही प्राप्ति होती है। चीनी का नारियल हमें यह शिक्षा देता है — जैसे मैं सब तरफ से मीठा हूँ; उसी प्रकार हे आत्मा! तू भी हर समय ज्ञायकस्वभाव ही है।

चन्दन का इच्छुक पुरुष – चन्दन का इच्छुक पुरुष जब चन्दन लेने जंगल में जाता है, तो वह अपने साथ गरुड़ या मोर को ले जाता है। मोर या गरुड़ की टङ्कार की आवाज को सुनते ही चन्दन पर लिपटे हुए अजगर और साँप भाग जाते हैं। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष, गरुड़ या मोर को साथ में न ले जावे तो वह चन्दन को प्राप्त नहीं कर सकता; उसी प्रकार वह अनादि काल से मिथ्यात्वरूपी अजगर, राग-द्वेषरूपी साँप, चन्दन के समान शीतल आत्मा के ऊपर लिपटे हुए हैं। यदि जीव अपने ज्ञायकस्वभाव का टङ्कार मारे, तो मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूपी

अजगर / साँप सब स्वयं भाग जाते हैं। इससे हमें शिक्षा मिलती है — यदि हम चन्दन के इच्छुक पुरुष के समानए अपने साथ अपनी ज्ञायक स्वभावी आत्मा को रखें तो मिथ्यात्व, राग-द्वेष कभी भी हमारे पास न आवे।

कीचड़ में पड़ा सोना - जिस प्रकार सोना, कीचड़ में पड़ा हो, उसे कभी भी जंग नहीं लगती; इसी प्रकार जो आत्मा एक बार अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा का अनुभव कर ले तो संसार की कोई भी ताकत उसे चारों गतिरूपी कीचड़ में नहीं फँसा सकती। इससे हमें शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार कीचड़ में पड़े सोने को जंग नहीं लगती; उसी प्रकार जिसे अपने आत्मस्वभाव का अनुभव हो गया है, वह अविरति हो, गृहस्थ हो, तथापि उसे मिथ्यात्वरूपी संसार कभी भी नहीं होता।

अग्नि - जिस प्रकार अग्नि में जो डालो, वह स्वाहा हो जाता है, वह किसी छोटे -बड़े का ख्याल नहीं करती, जलने योग्य को जला ही देती है; उसी प्रकार हे आत्मा! तेरा कार्य ज्ञान है। तू क्यों व्यर्थ में पर की करूँ-करूँ की मान्यता में बाबला होकर पागल होता है। अग्नि हमको शिक्षा देती है कि जिस प्रकार मैं अपने जलाने के स्वभाव को नहीं छोड़ती; उसी प्रकार हे आत्मा! तुझे अपने कार्य ज्ञान को नहीं छोड़ना चाहिए।

सांप और नेवला - साँप और नेवला एक-दूसरे के बड़ा भारी शत्रु होते हैं। जब नेवला, सांप के साथ लड़ाई करता है तो जंगल में एक नारनोल नाम की (ऐसी) जड़ी-बूटी होती है, उसी के पास रहकर साँप के साथ लड़ाई करता है, क्योंकि यदि लड़ाई में साँप काट ले तो उस जड़ी-बूटी की सुगन्ध से उसका विष दूर हो जाता है, तो हर हालत में नेवला, साँप को मार देता है; उसी प्रकार यह सारा संसार, सर्परूप है और पुरुषार्थ करनेवाला जीव, नेवला के समान है।

जो अपने ज्ञायकस्वभाव को नहीं जानता है और संयोग-राग-द्वेष में उलझा रहता है, इसी बुद्धि का नाम संसार है तथा संसार, सर्प के समान है। उसकी जब पुरुषार्थ करनेवाले जीव के साथ लड़ाई चलती है, तो यह जीव अपने त्रिकाली अविनाशी आत्मा की गन्ध की ओर देखता है तो अनादि काल की संसाररूपी बुद्धि दूर हो जाती है।

कहा है —

सर्परूप संसार है, नौलरूप नर जान।
संत बुटी संयोग तें, होत अहिं विष हाण॥

विषय-कषायों के पोषण में अथवा बेटा-बेटियों के विवाह में लाखों रुपये खर्च कर दे और जिनमन्दिर इत्यादि धर्मप्रभावना के कार्यों में सौ-दो सौ रुपये खर्च करने का प्रसङ्ग आवे तो भी लोभ करता है तो उसे योग्यस्थान में धन खर्च करने की खबर नहीं है; वास्तव में तो उसे संसार और धर्म के बीच का विवेक ही नहीं है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

यह संसार, सर्परूप है और नौलरूपी पुरुषार्थ करनेवाला जीव है। जब यह जीव, संसार के विषय-भोगों की अनुकूलता और प्रतिकूलता में जलता है, तब उसको सन्तरूपी जड़ी-बूटी से सर्परूप जो मिथ्यात्व है, उसका नाश हो जाता है।

यह जीव अनादि काल से दु:खी हो रहा है। इसका कारण केवल यही है कि इसे सन्तरूपी बूटी नहीं मिली। अनादि काल के दु:खी प्राणी को सन्तरूपी बूटी जो ज्ञायक स्वभाव ही है, जो जीव को चारों गतियों में भ्रमण नहीं करने देता है। सन्तरूपी बूटी (ज्ञायक स्वभावी) जिसके पास होती है, वह कभी भी आकुलित नहीं होता।

वास्तव में आत्मा, संयोग से, संयोगीभावों से, भेदरूप व्यवहार से भिन्न है। जो अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेता है, उसे संसार में कभी भी थकावट नहीं होती। यह शिक्षा सांप और नेवले के दृष्टान्त से मिलती है।

जो जीव ऐसे अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा को जान लेता है। उसके —

1. पाँच परावर्तनरूप संसार का अभाव हो जाता है।
2. पंचम गति को प्राप्त होता है।
3. पाँच परमेष्ठियों में पहुँच जाता है।
4. परमपारिणामिकभाव का महत्व आये बिना नहीं रहता।
5. पाँच जो कर्मबन्धन के कारण हैं, उनका अभाव हो जाता है।

॥ जय वीतरागी ज्ञायकस्वभाव की ॥

मिथ्यात्वसहित राग को राग कहा है;
मिथ्यात्वरहित चारित्रमोह सम्बन्धी परिणाम को राग नहीं कहा।

- पण्डित जयचन्द छाबड़ा

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

आठ कर्मों की सिद्धि

प्रश्न 1. कर्म आठ हैं — यह आप कैसे कह सकते हैं ? क्या आपके शास्त्रों के अलावा और कोई आधार भी है ?

उत्तर – हाँ, है; सभी कार्य के ऊपर से कारण का अनुमान लगाया जाता है।

वेदनीय – एक जीव रोगी है, एक निरोगी है; एक के पास लाखों-करोड़ों रुपया है, एक के पास फूटी कौड़ी भी नहीं – इससे वेदनीयकर्म की सिद्धि होती है।

नामकर्म – एक तो जहाँ जाता है, मान मिलता है; एक को जहाँ जाता है, बुराई ही मिलती है; एक रूपवान है, एक काला है – इससे नामकर्म की सिद्धि होती है।

आयुकर्म – एक की तो सौ वर्ष की उम्र है, एक पचास वर्ष में ही चल देता है, कोई दो वर्ष में ही चल देता है, कोई अन्तर्मुहूर्त में ही चल देता है – इससे आयुकर्म की सिद्धि होती है।

गोत्रकर्म – एक जैन है, एक शूद्र है; एक को नीचपना देखा जाता है, एक को ऊँचापना देखा जाता है — इससे गोत्रकर्म की सिद्धि हो जाती है।

संयोग चार प्रकार का ही बनता है। यदि और कोई बनता हो तो कोई बता दे ? है ही नहीं; इससे चार अघातिकर्मों की सिद्धि हो गयी।

ज्ञानावरणी – एक का ज्ञान का उघाड़ ऐसा है कि एक बार में सब बातें याद हो जाती है, एक का ज्ञान का उघाड़ ऐसा है कि पचास बार देखने से भी याद नहीं होता है – इससे ज्ञानावरणीकर्म की सिद्धि हो गयी।

दर्शनावरणी – सामान्यदर्शन होने पर ही ज्ञान होता है; इसलिए दर्शनावरणीकर्म की सिद्धि हो गयी।

अन्तराय – कोई ज्यादा पुरुषार्थ करता है और कोई जल्दी से पूर्ण दशा को प्राप्त कर लेता है और कोई थोड़ा ही कर पाता है – इससे वीर्यान्तराय की सिद्धि होती है। इसमें दान, लाभ, भोग, उपभोग भी लगा देने चाहिए। इससे अन्तरायकर्म की सिद्धि हो गयी।

मोहनीय – किसी के राग ज्यादा, किसी के कम राग दिखायी देता है — इससे मोहनीयकर्म की सिद्धि हो गयी।

अरे! श्रावक नाम धरावे और भगवान का दर्शन-पूजन नहीं करे, गुरु की सेवा नहीं करे, शास्त्र नहीं पढ़े-नहीं सुने, धर्म के प्रसङ्ग में दानादिक का उत्साह नहीं बतावे तो वह श्रावक नहीं है, अपितु मायाचारी है; उसे चेतन की उपासना नहीं होती है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय न होने से, उसे इस प्रकार के भावास्रव तो होते ही नहीं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषायसम्बन्धी बन्ध भी नहीं होता है।

– पण्डित जयचन्द छाबड़ा

संसार में आठ ही कर्म है और आठ ही बनते हैं।

प्रश्न 2. कर्म के उदय का क्या अर्थ है ?

उत्तर – उदय का अर्थ प्रगट है। जो कर्म, सत्ता में पड़ा था, वह उदय में आया, अर्थात् जो उदय में आता है, वह प्रगट करता है कि मैं जा रहा हूँ। कर्म बड़ा सज्जन है, कहता है कि मैं जा रहा हूँ। तुम आगे ऐसी ओंधाईपना मत करना कि मुझे आना पड़े, लेकिन अज्ञानी जीव, कर्म के उदय में रागभाव करके अपना जीवन खोते रहते हैं। देखो ! हमारे घर पर कोई मेहमान आवे, हम उसकी पूछताछ न करे तो वह जल्दी ही चला जाता है।

यदि हम दर्पण में अपना टेढ़ा मुँह करे तो दर्पण में टेढ़ा ही दिखायी देगा। यदि हम दर्पण में टेढ़ापना देखकर, दर्पण को तोड़ने लगे और कहने लगे कि भाई ! तुम ऐसा क्यों करते हो ? तो भाई शीशे में तो कोई ज्ञान नहीं है। यदि हम अपने मुँह को स्वयं सीधा कर ले और देखे तो दर्पण में सीधा ही दिखायी देता है। दर्पण तो यह शिक्षा देता है कि तुम सीधा हो जावो, हम तो सीधे ही हैं। इसी प्रकार कर्म कहते हैं कि तुम सीधे हो जावो, हम स्वयं चले जावेंगे, अर्थात् हे आत्मन् ! तुम अपने त्रिकाली स्वभाव की ओर देखो। द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म की ओर मत देखो, तो हम नहीं आवेंगे, लेकिन अज्ञानी, कर्म के उदय में राग-द्वेष करता है और उसे प्रेम से बुलाता है फिर कहता है कि मुझे, कर्म दु:खी करते हैं।

वास्तव में जब जीव पागलपन करता है तो उस समय कर्म का उदय निमित्त है। अज्ञानी, निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध को नहीं जानता। वह निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध को कर्ता-कर्मसम्बन्ध मानता है। मोक्षमार्गप्रकाशक, चौथे अध्याय में कहा है कि कोई अपने हाथ में पत्थर लेकर सिर में मारे, उसमें पत्थर का क्या दोष ? इसी प्रकार अज्ञानी हमेशा कर्म की ओर देखता है। उदय का अर्थ क्या है ? वह नहीं जानता है।

प्रश्न 3. पण्डित, त्यागी कहते हैं तथा शास्त्रों में भी तो लिखा है कि कर्म के उदय से जीव दु:खी होता है; ज्ञानावरणीकर्म, ज्ञान को नहीं होने देता – तो क्या वह असत्य है ?

उत्तर – नहीं भाई ! शास्त्र में जो लिखा है, वह तो सत्य है, लेकिन उसका क्या तात्पर्य है ? – यह नहीं जानता है। देखो भाई ! कोई वकील का कार्य करता है तो उसमें दूसरे पैसेवाला दखल नहीं देता है। कोई डाक्टर, डाक्टरी करता है तो

उसमें दूसरे पैसेवाला दखल नहीं देता। कहने का तात्पर्य यह है कि जो जिस व्यापार को जानता है, उसमें दूसरे व्यापारवाला दखल नहीं देता है लेकिन लोकोत्तरमार्ग में भी हम ऐसा करे कि जो आगम का अनुभवी ज्ञाता हो उससे प्रथम धर्म श्रवण करे, निर्णय करें, फिर किसी भी शास्त्र को पढ़े तो दृष्टि टीक होने से वीतरागता ही प्रगट हो।

लोकोत्तरमार्ग में देखा जाता है कि सब अज्ञानी अपनी अपनी बुद्धि लगाते हैं।

जिसको अभी यह नहीं मालूम कि 'तुम कौन हो, क्या तुम्हारा धर्म है, कहाँ से आये हो ?' पढ़ लिया गोम्मटसार, कहता है कि कर्म के कारण, जीव चक्कर काटता है। वास्तव में वह शास्त्र का उल्टा अर्थ निकालता है।

अरे भाई ! प्रथम लौकिक कार्यों की तरह दखल न देकर, धर्मगुरु से, विनय से प्रथम ज्ञानकला का रहस्य जान ले, तभी कल्याण हो सकता है।

॥ जय महावीर जय महावीर ॥

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

राग-द्वेष की उत्पत्ति कर्म से नहीं

मुमुक्षु : राग-द्वेष की उत्पत्ति का क्या कारण है ? साथ ही आप यह तो जानते-मानते ही हैं कि हर कार्य की उत्पत्ति में दो कारण होते हैं - उपादान और निमित्त।

राग-द्वेष की उत्पत्ति में निमित्तकारण मोहनीयकर्म है, इसमें आपको और हमें किसी को भी आपत्ति नहीं है, लेकिन पण्डितजी ! उपादानकारण क्या है ?

पण्डितजी : वैभाविकशक्ति उपादानकारण है।

मुमुक्षु : वैभाविकशक्ति गुण है। यदि वह राग-द्वेष का उपादान कारण हो तो यह सिद्धों में भी राग-द्वेष होना चाहिए; इसलिए पण्डितजी ! वैभाविकशक्ति तो राग-द्वेष का उपादानकारण प्रतीत नहीं होता है।

पण्डितजी : फिर आप ही बताइये ?

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

मुमुक्षु : मैं तो आपको बता ही दूँगा, लेकिन आप से ही इसका उत्तर कहलवाना चाहता हूँ। अच्छा, आप को थोड़ी देर के लिए डिपोजिट रखिये; अब पण्डितजी! यह बताइये कि 'राग-द्वेष के अभाव का क्या कारण है ?'

पण्डितजी : निमित्तकारण तो मोहनीय का अभाव, और उपादानकारण त्रिकाली स्वभाव का आश्रय।

मुमुक्षु : ठीक है पण्डितजी! देखिये, जैसे राग-द्वेष के अभाव का उपादानकारण त्रिकाली स्वभाव का आश्रय है; उसी प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति का उपादानकारण अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय न करना, यह है। देखिये पण्डितजी! जो बात डिपोजिट रखी थी, उससे यह हल हो जाता है, या नहीं।

पण्डितजी, ठीक है, आपका ज्ञान विशाल है।

बन्ध होने में मुख्य कारण मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी का उदय ही है..... अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ही है, उसका अभाव हो जाने पर फिर उनका बन्ध नहीं होता..... वृक्ष की जड़ कट जाने पर, फिर हरे पत्तों की अवधि कितनी ?

- पण्डित जयचन्द छाबड़ा

पण्डितजी की डायरी.....

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

आत्महित में बाधक पञ्च प्रकार के विकल्प

प्रश्न 1. (1) हमको सम्यग्दर्शन हो गया है, अब हम क्या करें ?

(2) हमें सम्यग्दर्शन हुआ है या नहीं, इसकी क्या पहिचान ?

(3) ऐसे कौन से कारण है जिससे हमको पता चल जावे कि हमें सम्यग्दर्शन है या नहीं ?

(4) सम्यग्दर्शन तो हमको है लेकिन ध्यान का क्या उपाय है ?

उत्तर - चारों प्रश्न मिलते-जुलते ही हैं। अनादि काल से इस जीव को यह पता नहीं है कि 'मैं कौन हूँ, किसका मेरे साथ सम्बन्ध है, किसके साथ सम्बन्ध नहीं है, किसको छोड़ूँ, किसको ग्रहण करूँ ?' — यह जीव जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ प्रत्येक पर में अपनत्वबुद्धि कर लेता है।

मनुष्य पर्याय पायी, महान आत्माओं का सत्संग किया और यथार्थ बात हृदय में आयी नहीं किन्तु अज्ञानता के कारण मान लेता है कि मुझे ज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

मुझे ज्ञान-सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है या नहीं ? इसका निर्णय स्वयं को जानने के लिए पाँच प्रकार के विकल्प होते हैं। जब तक यह जीव पाँच प्रकार के विकल्पों में रहता है, उनसे अपना भला-बुरा मानता है, तब तक वह द्रव्यलिंग मुनि क्यों न हो, वह मिथ्यादृष्टि ही है और पापी भी है।

प्रश्न 2. पाँच प्रकार के विकल्प कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) नोकर्म का विकल्प, (2) द्रव्यकर्म का विकल्प, (3) भावकर्म का विकल्प, (4) भेदकर्म का विकल्प, (5) अभेदकर्म का विकल्प।

प्रश्न 3. नोकर्म का विकल्प क्या है ?

उत्तर - अपनी आत्मा के अलावा समस्त आत्मा, जिसमें चौबीस तीर्थङ्कर, देव, गुरु, शास्त्र, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, सभी मेरी आत्मा की अपेक्षा नोकर्म हैं। जो जीव ऐसा मानता है कि जिनेन्द्र भगवान मुझे संसार से पार उतारेंगे, मैं भगवान की ओर देखता रहूँ, पूज्य श्रीकानजीस्वामी मुझे सम्यग्दर्शन करा देंगे, मुझे उनके हाथ-पैर दबाना चाहिए, ताकि ऐसा करते देखकर मेरे पर प्रसन्न हो जावें और मुझे सम्यग्दर्शन दे देवें।

जो संसार के किसी भी पदार्थ को इष्ट-अनिष्ट मानता हो, अन्यमत के गुरु, सच्चे गुरु नहीं है लेकिन जो दिगम्बर मत के हैं, कमण्डल-पिच्छी रखते हैं, यह सच्चे हैं, उनकी भक्ति करने से या सेवा करने से मुझे फायदा होता है; स्त्री, माता, पिता की बात तो दूर रही, समयसारशास्त्र पढ़ लूँ तो मेरा ज्ञान प्रगट हो जावेगा, उपवास करुँ तो भला हो, 28मूल गुण का पालन करुँ तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जावेगी, धर्मद्रव्य मुझे चलाता है, अधर्मद्रव्य मुझे ठहराता है, आकाशद्रव्य मुझे जगह देता है, कालद्रव्य सब चीजों को बदलता है — ऐसी धारणा जिस जीव की है, उसे अभी मेरी आत्मा से नोकर्म पृथक् है, इसका भान नहीं है।

गर्मियों में ठण्डा पानी पीने को मिले, बिजली का पंखा, हवादार मकान मिले, सोने के गद्देदार पलंग हो, खाने में उत्तम रसों का खानपान हो, सुगन्धी के लिए अच्छे फूल मिलें, देखने को सिनेमा मिले, या भगवान की मूर्ति ही देखता रहूँ, कानों में लाई-लप्प आदि के फिल्मी गाने पड़ते रहें या भगवान की दिव्यध्वनि सुनने को मिलती रहे — आदि परपदार्थों से जो अपना अच्छा होना मानता है तो उसे पाँच इन्द्रियों के विषयों से, जो कि सब नोकर्म है, भेदविज्ञान नहीं है।

वस्तु को उसके ध्रुवस्वभाव की ओर से देखने पर, वह एकरूप सदृश ऐसी की ऐसी दिखती है और पर्याय की ओर से देखने पर, वह प्रति समय पलटती हुई, विसदृश दिखती है। बदलती अवस्था, ध्यान का विषय नहीं है; ध्यान की नजर, ध्रुव पर है। अखण्ड अभेद एकरूप चैतन्यस्वभाव, ध्यान का विषय है, उसे पारिणामिकभाव कहा है। पारिणामिकभाव स्वयं उत्पाद-व्यय परिणामरूप नहीं है; इसलिए उसे अपरिणामी कहा है और बन्ध-मोक्षसम्बन्धी क्रिया, उसे नहीं होती; इसलिए उसे निष्क्रिय भी कहते हैं।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

समस्त द्रव्य, अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, वे मेरे लिए एक क्षण के लिए भी मददगार नहीं हैं। जब तक जीव को ऐसा निर्णय नहीं होता, तब तक उसे स्थूलरूप से नोकर्म पृथक् है, इसका भान नहीं है। अत: सम्यग्दर्शन की बात करना लाखों कोसों दूर है। निमित्त हो तो मुझे फायदा हो, व्यवहाररत्नत्रय हो तो निश्चयरत्नत्रय प्रगट हो — ऐसी मान्यतावाले सब मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो जीव, धर्म प्राप्त करना चाहता है, उसे अपनी आत्मा के अलावा समस्त नोकर्म से, उनके द्रव्य, गुण, पर्यायों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है — ऐसा न जाने, माने, तब तक उसे नोकर्म पृथक् है, मैं आत्मा पृथक् हूँ — वह धर्मप्राप्त करने का पात्र नहीं है; इसलिए प्रथम नोकर्म से भेदविज्ञान जरूरी है।

प्रश्न 4. द्रव्यकर्म का विकल्प क्या है ?

उत्तर - आठ कर्मों को द्रव्यकर्म कहते हैं। आठ कर्म, जैनधर्मी ही मानता है और नहीं।

मैं ज्ञान करना चाहता हूँ लेकिन ज्ञानावरणीकर्म का उदय है; इसलिए ज्ञान नहीं होता है।

मैं मन्दिरजी में गया, मुझे भगवान के दर्शन नहीं हुए क्योंकि मेरे दर्शनावरणीकर्म का उदय था।

मुझे संसार में अच्छे-अच्छे भोग्य पदार्थ नहीं मिलते हैं क्योंकि मुझे असातावेदनीय- कर्म का उदय है। मुझे अच्छे-अच्छे सम्बन्ध हैं, क्योंकि मुझे सातावेदनीयकर्म का उदय है।

मैं सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र प्रगट करना चाहता हूँ परन्तु मोहनीयकर्म का उदय कुछ करने नहीं देता।

मुझे दान देने का भाव आता है लेकिन अन्तरायकर्म विघ्न डालता है।

भाई ! मैं तो धर्म करना चाहता हूँ लेकिन कर्म आड़े आते हैं, मेरा कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार दिगम्बर नाम धराकर, कर्म के ऊपर दोष लगाता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पण्डित प्रवर टोडरमलजी कहते हैं कि धर्म न करने में, तत्त्व निर्णय न करने में तेरा ही दोष है; कर्म का दोष नहीं है। अपना दोष होने पर भी कर्म

सर्व बाह्य सामग्री में इष्ट-अनिष्टपना मानता है, अन्यथा उपाय करता है, सच्चे उपाय की श्रद्धा नहीं करता, अन्यथा कल्पना करता है, सो इन सबका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

का दोष लगाना, यह अनीति है। तुझे धर्म नहीं करना; इसीलिए झूठी युक्ति बनाता है, सो ठीक नहीं है। ऐसी मान्यतावाले जीवों को द्रव्यकर्म से भेदविज्ञान नहीं है।

वास्तव में जीव स्वयं को भूलकर द्रव्यकर्म में अपनापना मानता है, तब कर्म के उदय का उपचार आता है, अज्ञानी को इसका पता नहीं।

जो जीव, सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहता है, उसे द्रव्यकर्म से अपने को पृथक् जानना चाहिए। जीव के विकारी भावों का और कर्म का, शास्त्र में सहज निमित्त-नैमित्तिक-सम्बन्ध बतलाया है। यह नहीं है कि नैमित्तिक में निमित्त कुछ कर दे-करा दे।

इसलिए दोनों की स्वतन्त्रता जानकर, भेदविज्ञान करके, अपना भला चाहनेवालों को द्रव्यकर्म हमारा भला बुरा करता है, यह मान्यता हटा देनी चाहिए। जब तक जीव दूसरे नम्बर का भेदविज्ञान नहीं करता, वह द्रव्यकर्म का पक्षपाती है और पापी है। जो धर्मी होना चाहता है, वह अपने को द्रव्यकर्म से पृथक् जाने और माने।

प्रश्न 5. भावकर्म का विकल्प क्या है ?

उत्तर - शुभभाव और अशुभभाव में एकत्वपने का नाम, भावकर्म है। अशुभभाव को दूर करने का शुभभाव से फायदा मानने का भाव, मिथ्यात्व है। 28मूलगुण पालने का भाव, सोलहकारण का भाव, दया, दान, पूजा, प्रतिष्ठा का भाव सुखदाई-अच्छा है; हिंसा, झूठ, चोरी आदि का भाव मेरे लिए अच्छा नहीं है — ऐसा मानना मूढ़पना है।

इस समय शुभभाव कर लें, फिर यहाँ से स्वर्ग में जाकर वहाँ से विदेहक्षेत्र में जाकर, शुभभाव करते-करते सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे; इस प्रकार जब तक जीव की शुभभाव अच्छा है — ऐसी मान्यता रहेगी, तब तक वह जीव, धर्म प्राप्त करने का अधिकारी भी नहीं कहला सकता। शुभभाव से संवर, निर्जरा, धर्म होता है — ऐसी धारणावाला, भावकर्म का पक्षपाती मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

जिसको शुभभाव की जरा भी मिठास है, वह कभी भी संसार से पार नहीं हो सकता है। द्रव्यलिंगी, शुभभाव को अच्छा मानकर, अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। शुभभाव, आस्रवभाव ही है; आत्मा को धर्म करने के लिए हानिकारक है। आस्रवभाव निबद्ध, अध्रुव, अशरण, अनित्य, दु:खरूप और दु:ख के फलरूप हैं — ऐसा समयसारजी में बतलाया है। शुभभाव कुशील हैं, संसार का कारण हैं।

अपने ज्ञान में केवली भगवान का स्वीकार करे और अनन्त भव की शङ्का भी रहे - ऐसा कदापि नहीं हो सकता। जिसके ज्ञान में केवलज्ञान का स्वीकार है, उसे अनन्त भव की शङ्का नहीं है और जिसे अनन्त भव की शङ्का है, उसे केवलज्ञान का स्वीकार नहीं हुआ है। जिस प्रकार केवलज्ञानी भगवान के भव नहीं है; उसी प्रकार उस केवलज्ञान की प्रतीति करनेवाले को भी भव की शङ्का नहीं रहती।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

अशुभभाव तो पाप हैं ही, शुभभाव भी पाप हैं – ऐसा योगसार में कहा है; इसलिए शुभ-अशुभ दोनों को एक-सा आस्रवभाव जानना चाहिए, तभी कल्याण सम्भव है। जब तक जरा भी शुभभाव की मिठास रहेगी, वह भावकर्म का पक्षपाती, आत्मघाती कहलाता है। धर्मी बनने के लिए भावकर्म को संसार का कारण जानकर, इससे निवृत्त होना चाहिए।

प्रश्न 6. भेदकर्म का विकल्प क्या है ?

उत्तर – आत्मा में अनन्त गुण हैं। सम्यग्दर्शन, श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है। ज्ञान है, वह आत्मा है; राग, आत्मा नहीं है। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। कर्ता-कर्मादि का विचार, सब भेदकर्म का विकल्प है। जो जीव ऐसे ही विकल्पों में लगा रहता है, आत्मा का अनुभव नहीं करता वह भेदकर्म में पड़ा रहने के कारण भेदकर्म का पक्षपाती होने से आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता है। जब तक इनसे रहित अभेद आत्मा का अनुभव नहीं करता, संसार में ही घूमता रहता है।

प्रश्न 7. अभेदकर्म का विकल्प क्या है ?

उत्तर – मैं पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ, ध्रुव हूँ, निर्विकल्प हूँ, अखण्ड अभेद हूँ — ऐसे विचारों में बैठा रहता है; बार-बार सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी अविनाशी आत्मा हूँ – ऐसे विकल्पवाले यह सब अभेदकर्म के पक्षपाती मिथ्यादृष्टि ही कहलाते हैं क्योंकि अभेद अखण्ड होता है। क्या वह कभी कहेगा कि मैं भगवान हूँ-शुद्ध हूँ ? इस मान्यतावाले सब अभेदकर्म के पक्षपाती, आत्मघाती कहलाते हैं।

सब दु:खों का मूलकारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान और संयम है..... मिथ्यादर्शनादिक हैं, वे ही सर्व दु:खों का मूलकारण हैं।

– **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल**

प्रश्न 8. तब फिर क्या करना ?

उत्तर – नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म, भेदकर्म, अभेदकर्म पर जिसकी दृष्टि है या ऊपर अनुसार अपने में ऐसे-ऐसे भावों को देखता है, उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए। इन सबसे रहित उग्र पुरुषार्थ करके आत्मा का अनुभव करना चाहिए।

आत्मा का अनुभव होने पर शुद्धपरिणति निरन्तर रहती है, उसका अनुभव हुए बिना अज्ञानी जीव अपनी मूर्खतावश इन पाँच प्रकार के विकल्पों में ही अटक कर अपना जीवन व्यर्थ खो देते हैं। इनसे रहित आत्मा का अनुभव करना – यही आत्मा का कार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

भेदविज्ञान के पाँच बोल

प्रश्न : भेदविज्ञान के पाँच बोल कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : 1. अनादि काल से आज तक किसी भी परद्रव्य ने मुझे लाभ-नुकसान किया ही नहीं।

2. अनादि काल से आज तक मैंने भी किसी भी परद्रव्य को लाभ-नुकसान नहीं पहुँचाया।

3. अनादि काल से आज तक मैंने नुकसानी का ही धन्धा किया है क्योंकि यदि नुकसानी ना की होती तो परिभ्रमण मिट जाना चाहिए था, सो हुआ नहीं।

4. वह नुकसानी, मात्र पर्याय में ही हुई है; द्रव्य-गुण में नहीं।

5. यदि यह जीव नुकसानी टालना चाहे तो अपने ज्ञायकस्वभाव की ओर सन्मुख होने से ही अनादि काल की पर्याय की नुकसानी मिट सकती है; इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है।

॥ जय! भेदविज्ञानी की जय ॥

'केवली भगवान ने मेरे अनन्त भव देखे होंगे' - ऐसी शङ्का मिथ्यादृष्टि को ही होती है; सम्यक्त्वी को कदापि ऐसी शङ्का नहीं होती। 'मैं अनन्त संसार में परिभ्रमण करूँगा' - ऐसी जिसे शङ्का है, उसे ज्ञायकभाव की- केवलज्ञान की प्रतीति नहीं है; वह अनन्त भव की शङ्कावाला जीव, केवलज्ञान को नहीं देखता, किन्तु कर्म को ही देखता है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

पण्डितजी की डायरी.....

क्या है कषाय.....

प्रश्न : अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का क्या स्वरूप है ?

उत्तर : 1. स्वरूप की अरुचि और पर की रुचि, अनन्तानुबन्धी क्रोध है।

2. मैं परपदार्थ का कुछ नहीं कर सकता, फिर पर में हेरफेर करने की बुद्धि रखना या बाह्य संयोग आदि से अपने को बड़ा मानना, अनन्तानुबन्धी मान है।

3. स्वरूप की आड़ मारना, अर्थात् पञ्चम काल है, चौथा काल नहीं है, इस समय किसी को मोक्ष की प्राप्ति तो होनी नहीं; इसलिए शुभभाव तो कम से कम करने की मान्यता-बुद्धि को अनन्तानुबन्धी माया है।

4. पुण्य की संग्रह बुद्धि (पुण्य की मिठास), अनन्तानुबन्धी लोभ है।

मिथ्यादृष्टि को एक-एक समय में चारों कषायें एक साथ होती हैं, चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि ही क्यों न हो; तथा सम्यग्दृष्टि जीव लड़ाई में खड़ा, तीर पर तीर चला रहा हो, 96 हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठा हो, उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों में से एक का भी बन्ध नहीं होता है।

प्रश्न 2. क्या इसीलिए कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि के भव और भव का भाव नहीं है ?

इस भवतरु का मूल
एक मिथ्यात्वभाव है।
- **आचार्यकल्प**
पण्डित टोडरमल

उत्तर - स्वभाव में भव और भव का भाव नहीं, अर्थात् स्वभाववन्त को भव और भव का भाव नहीं; इसीलिए कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि का भव बढ़ता नहीं और भव बिगड़ता भी नहीं। सम्यग्दृष्टि के पास सदैव ज्ञायकस्वभावी अमृत की संजीवनी बूटी है।

प्रश्न 3. ज्ञानी-अज्ञानी का माप किससे नहीं होता है ?

उत्तर - बाह्य संयोग के अनुसार राग-द्वेष का माप नहीं। बाह्य राग-द्वेष के अनुसार ज्ञानी-अज्ञानी का माप नहीं।

प्रश्न 4. मोह, राग, द्वेष की क्या परिभाषा है ?

उत्तर – 1. अपने स्वरूप की असावधानी, पर में सावधानी, उसे मोह कहते हैं।

2. कोई भी परपदार्थ मेरे लिए लाभकारक है — ऐसी मान्यतापूर्वक प्रतीति करना, उसे राग कहते हैं।

3. कोई भी परपदार्थ मेरे लिए नुकसानकारक है — ऐसी मान्यतापूर्वक प्रतीति करना, उसे द्वेष कहते हैं।

प्रश्न 5. सम्यग्दर्शन होने पर, मोह, राग, द्वेष के विषय में जीव की क्या दशा होती है ?

उत्तर – मिथ्यात्व का अभाव होने से अपने स्वरूप की सावधानी, पर में असावधानी होने से मोह दूर हो जाता है तथा कोई भी परपदार्थ, लाभ-नुकसान का कारण न होने से अनन्त राग-द्वेष छूट गया — ऐसा होने पर, जितना-जितना स्वरूप में लीनता करता है, उतनी-उतनी शुद्धता होकर परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न 6. समयसारजी के पुण्य-पाप अधिकार में सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी की बात आचार्य ने क्यों की ?

उत्तर – यह सर्वज्ञानी, दर्शि भी, निज कर्म रज आच्छाद से।
संसार प्राप्त न जानता, वो सर्व को सब रीत से॥

160 वीं गाथा में बताया है कि जिस जीव को पुण्य-पाप की रुचि होती है, उसको सर्वज्ञ और सर्वज्ञस्वभाव की श्रद्धा कभी भी नहीं होगी। शुभभाव से धर्म होवे, संसार अवस्था में शुभभाव कुछ तो मदद करता ही है — ऐसी जिसकी मान्यता है, उसको कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी और न ही सर्वज्ञ तथा सर्वज्ञस्वभाव की श्रद्धा होगी तथा पर्याय में जब तक पुण्य-पाप का भाव होवे, तब तक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं हो सकेगा।

1. अज्ञानदशा में जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की रुचि तथा पुण्य-पाप की रुचि हो, वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बनने का अधिकारी नहीं हो सकता।

(i) जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी, तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती, और

जो भवरहित केवली भगवान को देखता है, उसे तो – जिसमें भव नहीं ऐसा – अपना ज्ञायकस्वभाव प्रतीति में आ गया है, उसे अब अनन्त भव होते ही नहीं और केवली भगवान ने उसके अनन्त भव देखे ही नहीं.... उसे स्वयं को भी अनन्त भव की शङ्का नहीं रहती।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

(ii) जब तक पर्याय में पुण्य-पाप का भाव होवे, तब तक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं बन सकता।

2. जिस जीव को क्षयोपशमज्ञान के उघाड़ की रुचि तथा पुण्य-पाप के भाव की रुचि न छूटे, तब तक वह वीतराग-सर्वज्ञ नहीं बन सकता।

प्रश्न 7. मोक्षमार्ग में अपना हित करने के लिए किसी की जरूरत नहीं है ?

उत्तर - अपने कल्याण के लिए, आत्महित साधने के लिए मोक्षमार्ग में परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की तथा पुण्य की पदवी की, किंचित्मात्र भी कीमत नहीं है। जैसे, छठवें गुणस्थानवर्ती दो मुनि हैं। एक मुनि को केवल मति-श्रुतज्ञान का उघाड़ है। दूसरे मुनि को मति-श्रुत-अवधि और मन:पर्यय ज्ञान का उघाड़ है।

विचारयेगा - (1) ज्ञान का अल्प उघाड़ होने पर, आत्मा में स्थिरता करके अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की प्राप्ति करे। जैसे, शिवभूति मुनि।

(2) दूसरे को ज्ञान का विशेष उघाड़ होने पर, अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञान परलक्ष्यी ज्ञान होने के कारण, जब तक अवधिज्ञान मन:पर्ययज्ञान में उपयोग होगा, वह श्रेणी भी नहीं मांड सकता। इससे सिद्ध होता है (कि) परलक्ष्यी ज्ञान, मोक्षमार्ग में हितकारी नहीं है।

साधु से आचार्य, उपाध्याय की ऊँची पदवी है लेकिन जब तक आचार्य, उपाध्याय पद पर जीव रहेगा, तब तक वह श्रेणी नहीं माँड सकता। आचार्य, उपाध्याय पद छोड़कर, साधु होने पर ही श्रेणी माँड कर केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न 8. फिर अपने हित के लिए क्या करें ?

उत्तर - अपने कल्याण के लिए ज्ञान के उघाड़ की और पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय ले, तभी आत्मा में धर्म की शुरुआत होगी।

॥ जय गुरुदेव जय ॥

इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है; इसलिए सूक्ष्म मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

संयोग उदयाधीन

प्रश्न 1. क्या जीव मेहनत करता है, तब संयोग रुपया, स्त्री, आदि का सम्बन्ध होता है ?

उत्तर – ऐसा है ही नहीं, क्योंकि जीव का कार्य ज्ञाता-दृष्टा है, वह परवस्तु में कुछ करे – ऐसा नहीं है।

बाहरी वस्तुओं का संयोग सम्बन्ध होता है, वह पुण्य के कारण होता है, उसमें (पुण्य में) वर्तमान चतुराई कोई मायने नहीं रखती, क्योंकि वर्तमान में एक कसाई हजार गायों को मारता है, उसके बदले में दो हजार मिलता है। गायों को मारने का भाव, पापभाव है – तो क्या पापभाव से रुपयों की प्राप्ति का संयोग सम्बन्ध हो सकता है ? कभी भी नहीं।

डाक्टर है, वर्तमान में मेंढ़क चीरकर कहता है कि इससे मेरे ज्ञान का विशेष उघाड़ होता है, यह सब गप्प है।

वास्तव में जो जीव, जिस समय जो भाव करता है, उसका फल (सुखी या दु:खी होना) भाव में उसी समय मिलता है।

॥ इति ॥

जगत् में केवलज्ञानी भगवान हैं – ऐसा स्वीकार करनेवाले ने आत्मा में केवलज्ञान के सामर्थ्य की स्वीकार किया है; केवलज्ञान होने का सामर्थ्य अपने में है, उस सामर्थ्य के सन्मुख होकर केवलज्ञान का यथार्थ स्वीकार होता है; इसके अतिरिक्त केवलज्ञान की प्रतीति नहीं होती।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

जिस जीव की जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, उसकी वैसी ही बुद्धि हो जाती है; वह प्रयत्न भी उसी प्रकार का करने लगता है, और उसे सहायक भी उसके अनुसार मिल जाते हैं। इस श्लोक में भवितव्यता को मुख्यता दी गयी है।

- श्रीमद् अकलंकदेव

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी में से.....

रागादिभाव पौद्गलिक कैसे ?

प्रश्न 1. रागादि को पुद्गल का क्यों कहा ?

उत्तर - इसके तीन कारण है —

1. पुद्गल के सम्बन्ध से होते हैं; इसलिए पुद्गल का कहा है।

2. जीव से निकल जाते हैं तथा टालने के लिए पुद्गल का कहा है।

3. राग में जागृति का एक अंश भी नहीं; इसलिए सर्वथा अचेतन होने से पुद्गल का कहा है।

प्रश्न 2. (1) पर्याय, (2) पर्यय, (3) परिणमन, (4) अवस्था — इनका धातु अर्थ क्या है ?

उत्तर - (1) पर्याय = परि-समस्त प्रकार से, आय = लाभ।

अर्थात्, अपने में ही समस्त प्रकार से लाभ।

(2) पर्यय = परि - समस्त प्रकार से, ऐय = परिणमन।

अर्थात्, समस्त प्रकार से परिणमन, इसका नाम पर्यय है।

(3) परिणमन = समस्त प्रकार से अपने में झुक जाना, इसका नाम परिणमन है।

(4) अवस्था = अव=निश्चय, स्था=स्थिति करना।

अर्थात्, अपने में ही निश्चय से स्थिति करना, ठहरना, इसका नाम अवस्था है।

प्रश्न 3. निश्चय-व्यवहार का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - (1) जब पर निमित्त को व्यवहार कहा जावेगा, तब अपने में जो राग-द्वेष आदि की पर्याय होती है, वह निश्चय है।

(2) जब विकार (राग-द्वेषादि की पर्याय) को व्यवहार कहा जावेगा, तब अविकारी (विकाररहित) पर्याय, वह निश्चय है, अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय, वह व्यवहार है, और निश्चयरत्नत्रय, वह निश्चय है।

(3) जब अविकारी पर्याय को व्यवहार कहा जावेगा, तब त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, वह निश्चय है।

प्रश्न 4. साकार-निराकार का किस-किस अर्थ में प्रयोग होता है ?

उत्तर - (1) दर्शनोपयोग को निराकार उपयोग कहते हैं क्योंकि दर्शन, सब पदार्थों को अभेदरूप से देखता है।

(2) ज्ञानोपयोग को साकार उपयोग कहते हैं क्योंकि ज्ञान, सब पदार्थों को भिन्न -भिन्न जानता है। दूसरी तरह से :—

(1) इन्द्रियगम्य न होने से (आत्मा के) आकार को निराकार कहते हैं।

(2) प्रदेशत्वगुण के कारण आकार होने से आकार को साकार कहते हैं।

प्रश्न 5. सविकल्प और निर्विकल्प किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उत्तर - (1) बुद्धिपूर्वक रागसहित अवस्था को सविकल्प अवस्था कहते हैं।

(2) अबुद्धिपूर्वक रागसहित किन्तु बुद्धिपूर्वक रागरहित अवस्था को निर्विकल्प अवस्था कहते हैं। दूसरी तरह से -

(1) ज्ञान में पदार्थ भिन्न-भिन्न जाना जाता है; इसलिए ज्ञान को सविकल्प अवस्था कहते हैं।

(2) दर्शन में अभेद देखा जाता है; इसलिए दर्शन को निर्विकल्प कहा जाता है।

प्रश्न 6. सामान्य-विशेष किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उत्तर - (1) दर्शन को सामान्य कहते हैं, (2) ज्ञान को विशेष कहते हैं।

दूसरी प्रकार से - (1) संक्षेप से (थोड़े में) बोलने के अर्थ में इसे सामान्य कहते हैं — जैसे भाई! थोड़े में वर्णन कर दो।

(2) विस्तारपूर्वक अर्थ में इसे विशेष कहते हैं — जैसे, भाई! स्पष्ट तौर से वर्णन करो।

तीसरी प्रकार से - (1) द्रव्य को सामान्य कहते हैं।

(2) पर्याय को विशेष कहते हैं।

जिसने केवलज्ञान का निर्णय किया है, उसके अनन्त भव होते ही नहीं; जिसने भवरहित केवलज्ञान का निर्णय किया, उसके अनन्त भव केवली भगवान ने देखे ही नहीं हैं। जहाँ अनन्त भव की शङ्का है, वहाँ स्वभाव की ही शङ्का है। जहाँ स्वभाव की नि:शङ्कता हुई, वहाँ भव की शङ्का नहीं रहती। केवलज्ञान की प्रतीति और अनन्त भव की शङ्का - यह दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

आयुकर्म के उदय से मनुष्यादि पर्यायों की स्थिति रहती है। आयु का क्षय हो, तब उस पर्यायरूप प्राण छूटने से मरण होता है। दूसरा कोई उत्पन्न करनेवाला, क्षय करनेवाला या रक्षा करनेवाला है नहीं – ऐसा निश्चय करना।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

प्रश्न 7. भेद-अभेद किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उत्तर – (1) एक वस्तु का, दूसरी वस्तु से भेद करके जानना, भेद है।

(2) भेद डाले बिना देखना, अभेद है। दूसरी तरह से :—

(1) गुण, पर्याय को भेद कहते हैं।

(2) द्रव्य को अभेद कहते हैं।

प्रश्न 8. चेतन-चैतन्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य को चेतन कहते हैं; गुण को चैतन्य कहते हैं।

प्रश्न 9. धर्म क्या है ?

उत्तर – जीवद्रव्य की अविकारी (शुद्ध) पर्याय, धर्म है।

प्रश्न 10. अधर्म क्या है ?

उत्तर – जीव की विकारीपर्याय अधर्म है।

प्रश्न 11. सात तत्त्वों में धर्म का समावेश कौन-कौन तत्त्वों में है ?

उत्तर – संवर, निर्जरा, मोक्ष में।

प्रश्न 12. सात तत्त्वों में अधर्म का समावेश कौन-कौन तत्त्वों में है ?

उत्तर – आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप में।

प्रश्न 13. धर्म कैसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर – त्रिकाली द्रव्य का लक्ष्य करने से।

प्रश्न 14. अधर्म कैसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर – अपने त्रिकालीद्रव्य की दृष्टि नहीं करके, अन्य के प्रति दृष्टि देने से।

प्रश्न 15. हर समय क्या लक्ष्य करना है ?

उत्तर – त्रिकाली द्रव्य का 'यह मैं हूँ।'

प्रश्न 16. धर्म किसमें होता है ?

उत्तर – पर्याय में होता है; द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध ही हैं। पर्याय में शुद्धता का प्रगट होना, धर्म है।

प्रश्न 17. जीव को लोकाग्र जाने में एक समय से ज्यादा लगे तो क्या हानि ?

उत्तर – जब जीव सम्पूर्ण शुद्ध हो जाता है, तब उसमें सम्पूर्ण शक्ति आ जाती है। यदि लोकाग्र जाने में एक समय से ज्यादा लगे तो जीव की पूर्ण शक्ति प्रगट नहीं कही जाएगी, लेकिन पर्याय में पूर्ण शक्ति विकसित हो गयी है; इसलिए लोकाग्र जाने में एक समय ही लगता है।

प्रश्न 18. छेद और छेदोपस्थापना किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने स्वरूप की रमणता से हटकर, श्रद्धासहित, प्रमाद के वश होना, उसे छेद कहते हैं और उस प्रमाद को हटाकर, अपने स्वरूप में आना, उसे छेदोपस्थापना कहते हैं। जैसे, सातवाँ गुणस्थानवाला मुनि, जब छठे गुणस्थान में आता है, उसे 28मूलगुण पालने का भाव आता है, उस समय किसी समय आर्तध्यान भी आ जावे, उसका नाम छेद है और इस वृत्ति को तोड़कर, सातवें गुणस्थान में, अपने स्वरूप में आना छेदोपस्थापना है। यह चौथे गुणस्थान में शुरु होकर, बारहवें गुणस्थान तक होती है, बाद में इसका फल आता है।

प्रश्न 19. सामायिक किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने स्वरूप में रमण करना सामायिक है। जब स्वरूप की रमणता से हट जावे, तब सामायिक पाठ आदि का विचार, उपचार से-व्यवहार सामायिक नाम पाता है। स्वरूप रमणता के बिना कोई सामायिक है ही नहीं।

प्रश्न 20. ऐसी सामायिक कैसे करें ?

उत्तर – प्रथम सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करके, सात तत्त्वों के विचारपूर्वक, स्व-पर का भेदविज्ञान करे, तब स्व में स्व को पहिचाने। स्वरूप की प्रतीति होने पर ही सामायिक की शुरुआत होती है। क्षणभर की सच्ची सामायिक, सम्यग्दर्शन का कारण है।

प्रश्न 21. मुक्ति के कितने भेद हैं ?

उत्तर – तीन हैं — (1) दृष्टिमुक्ति, (2) जीवनमुक्ति, (3) विदेहमुक्ति।

प्रश्न 22. दृष्टिमुक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने स्वरूप का अनुभव, 'यह ही है; अन्यथा नहीं है', इसे दृष्टिमुक्ति कहते हैं। यदि इन मनुष्य जीवन में दृष्टिमुक्ति न हुई तो यह मनुष्य जीवन ही नहीं है। दृष्टिमुक्ति सहित, नरकवास उत्तम है और दृष्टिमुक्ति रहित, देवपर्याय भी व्यर्थ है।

निश्चय से जैसा सर्वज्ञ भगवान का स्वभाव है, वैसा ही इस आत्मा का स्वभाव है; इसलिए सर्वज्ञ को पहिचानने से अपने आत्मा की पहिचान होती है। जो जीव, सर्वज्ञ को नहीं पहिचानता, वह अपने आत्मा को भी नहीं पहचानता।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

प्रश्न 23. जीवनमुक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य की शक्ति का प्रगट होना, जीवनमुक्ति है, अर्थात् 13 वाँ और 14 वाँ गुणस्थान, जीवनमुक्ति है।

प्रश्न 24. विदेहमुक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – आठ गुणसहित, अष्ट कर्मरहित, अक्षय सुख को प्राप्त, सदा अपने में रत, विदेहमुक्ति है। यह उत्पाद-व्ययसहित लोक के अग्रभाग में अपने असंख्य-प्रदेशों में विचरते हैं, यह अवस्था, सिद्ध अवस्था है। ऊपर आठ गुणसहित, यह व्यवहार से कहा है।

प्रश्न 25. वीतरागता और आप्तपना किस-किस गुणस्थान में प्रगट होता है, वीतरागता प्राप्त होते ही आप्तपना हो जाता है, या नहीं ?

उत्तर – ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में वीतरागता होती है, मोह नष्ट हो जाता है और तेरहवें गुणस्थान में ज्ञान, दर्शन, वीर्य की पूर्ण शक्ति प्रगट होने पर, आप्तपना प्रगट होता है। वीतरागता बारहवें गुणस्थान में तथा आप्तपना तेरहवें गुणस्थान में आता है।

प्रश्न 26. आप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर – वीतराग, सर्वज्ञ, और हितोपदेशी हो, वह ही आप्त कहलाता है।

प्रश्न 27. पूर्ण आप्तपना नियम से किसक होता है ?

उत्तर – तीर्थङ्कर के ही होता है क्योंकि उनकी दिव्यध्वनि खिरती है।

प्रश्न 28. तीर्थङ्कर पद का बन्ध, संसार से पार होने के लिए है, या भव्य जीवों को पार करने के लिए है ?

उत्तर – तीर्थङ्कर पद जिस जीव को प्राप्त होता है, उसका फायदा न तो स्वयं तीर्थङ्कर होनेवाले को है; न दूसरे जीवों को, क्योंकि तीर्थङ्कर प्रकृति विशिष्ट पुण्यप्रकृति है।

शरीरसम्बन्ध की अपेक्षा जन्मादिक हैं। जीव, जन्मादि रहित नित्य ही है, तथापि मोही जीव को अतीत-अनागत का विचार नहीं है; इसलिए अज्ञानी, प्राप्त पर्यायमात्र ही अपनी स्थिति मानकर, पर्याय सम्बन्धी कार्यों में ही तत्पर हो रहा है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

समस्त पदार्थों को जानने के सामर्थ्यरूप सर्वज्ञत्वशक्ति आत्मा में त्रिकाल है, किन्तु पर में कोई फेरफार करे – ऐसी शक्ति, आत्मा में कदापि नहीं है।

जिनेन्द्र-पूजा का स्वरूप

प्रश्न : पूजा कैसे करनी चाहिए ?

उत्तर : उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकै, चरू सुदीप सुधूप फलार्धकैः।
धवल मंगल गान रवा कुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजै॥

जिनगृहे जिननाथम् अहं यजे = मैं पूजता हूँ, जिननाथ को जिनमन्दिर में।

नाथ किसे कहते हैं ?

जो प्राप्त की रक्षा करे और जो प्राप्त नहीं है, उसे प्राप्त करावे, वह नाथ है।

जितनी शुद्धता प्राप्त हुई हो, उसकी रक्षा करे, तथा जो शुद्धता अप्रगट है, उसे प्राप्त करावे, वह जिननाथ है — ऐसे जिननाथ को मैं जिनमन्दिर में पूजता हूँ।

वह मन्दिर कैसा है ?

उज्ज्वल और कल्याणकारी स्तवनों की आवाजों से गूँज रहा है — ऐसे मन्दिर में मैं जिननाथ की पूजा करता हूँ।

मन्दिर में जाकर — तुमने मुझे छू दिया, तुम मेरी जगह खड़े हो गये, तुमने मेरी सामग्री को हाथ क्यों लगाया ? फलां बाई कैसे आती है ? फलां ने कैसा-कैसा जेवर पहन रखा है; इसकी आवाज बड़ी सुन्दर है; यह गाती है तो मुझे बड़ा अच्छा लगता है; फलां बाई उससे सुन्दर है; भाईजी ! आज घर से पत्र आया है; इनकम टैक्स की तारीख है; आज मुन्ने की अम्मा बीमार है; आज मुन्नी को दिखाना है; देखने के लिए यहीं पर निश्चित किया है; लड़की दर्शन कर रही होगी, लड़का आकर देख जावेगा, उसकी सुरीली आवाज और सुन्दरता देखकर उसे पसन्द कर ही लेगा, और लड़के ने इंजीनियरिंग पास कर ली है, अच्छी नौकरी मिल गयी है—

— हे भाई ! जरा विचार, क्या जिनमन्दिर में इसीलिए जाया जाता है ? पात्र जीव को जिनमन्दिर में ऐसी बातें कभी भी नहीं करनी चाहिए।

अष्ट द्रव्यरूप पूजन सामग्री से, जो मन्दिर, धवल मङ्गल स्तवनों से गुञ्जायमान हो रहा है — ऐसे जिनमन्दिर में, मैं जिननाथ की पूजा करता हूँ।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

पूजा के अष्ट द्रव्य और उनसे प्राप्त बोध

1. उदक = जल

1. सबसे पहले जल से पूजा की जाती है, क्योंकि वह नरम, प्रवाहित / द्रवीभूत है। जिसका हृदय कठोर हो, तीव्र कषायी हो, वह भगवान की पूजा करने के लायक नहीं है। जो द्रवीभूत नरम, अर्थात् मन्दकषायी हो, वह ही भगवान की जल से पूजा कर सकता है।

2. जल, अस्वच्छता का नाश कर, स्वच्छता करता है। पूजन करते समय हमारे हृदय में भी मोह-राग-द्वेषरूप मलिनता का नाश होकर, शुद्धता आ जानी चाहिए, तभी हम जल से भगवान की पूजा के अधिकारी हैं।

3. जल, जब स्थिर हो और स्वच्छ हो, तब उसमें अपनी मुखाकृति भासती है, वैसे ही अपना हृदय जब आकुलता से रहित, स्थिर हो तथा मोह-राग-द्वेष से रहित स्वच्छ हो, तब भगवान का प्रतिबिम्ब झलक सकता है, तभी हमने जल से पूजा की — ऐसा कहना सार्थक है।

4. जल का भरा हुआ समुद्र गम्भीर है, उसमें कूड़ा डाला जावे या पुष्प डाला जावे, सभी को वह अपने में समा लेता है, इतना गम्भीर है। उसी प्रकार कूड़ारूप प्रतिकूलता हो या पुष्परूप अनुकूलता हो तो भी उसे अपने में समा देना चाहिए, इतनी गम्भीरता आ जानी चाहिए, अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा बनना चाहिए। ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव हुए बिना, जल से पूजा की — क्या ऐसा कहना सार्थक है ? कभी भी नहीं।

5. सागर में जब भरती का (ज्वार का) समय हो, तब सूर्य का 118 डिग्री का ताप भी उसे रोक सकता नहीं है तथा ओट का (भाटा का) समय हो, तब 25 इंच बरसात पड़ती हो और सम्पूर्ण नदियों का पानी उसमें आकर मिलता हो, तब भी वे भरती ला नहीं सकती है; वैसे ही अपना ज्ञानसमुद्र अन्तर-मध्य बिन्दु से उछले, तब बाहर की प्रतिकूलता कुछ भी विघ्न नहीं कर सकती है तथा स्वयं अपराधी होकर हीनता करे तो बाहर की इन्द्रियाँ, शास्त्र, वाणी, आदि कोई भी उसको सहायता नहीं कर सकते हैं — ऐसा निर्णय हुए बिना, जल से पूजा करना बनता ही नहीं।

6. **क्षारं जलं वारिमुचः पिवन्ति, तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।**
सन्तस्तथा दुर्जनदुर्वचान्सि, पीत्वा च सूक्तानि समुद्रगिरन्ति॥

जो इन्द्रियों से प्राप्त किया सुख है, वह पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है, बन्ध का कारण है, विषम है; अतः ऐसा सुख, इस प्रकार दुःख ही है।
- आचार्य कुन्दकुन्द

देखो, हमें बादल से यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार बादल, खारा जल पीकर भी मीठा पानी देता है; उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष, दुष्ट पुरुषों की कठोरवाणी को सुनकर भी, मीठी और सबको प्रिय लगनेवाली वाणी ही बोलते हैं। ऐसा जाने, तभी जल से पूजा करना कहलाता है। कहा है —

गौरवं प्राप्यते दानात्, न तु वित्तस्य संचयात्।
स्थिति रुच्चैः पयोदानां, पयोधी नामधः स्थितिः॥

दान से बड़ाई मिलती है; संचय करने से नहीं। धन के संचय से बड़ा नहीं कहलाता, दान से बड़ा गौरव मिलता है। जैसे, पानी देनेवाला बादल ऊँचा है, संग्रह करनेवाला समुद्र नीचे है। देनेवाला ऊँचा, लेनेवाला नीचे। यदि वक्ता भी श्रोता से मान-सम्मान या धन माँगे तो श्रोता ऊँचा और वक्ता नीचा हो जाता है; इसलिए वक्ता को श्रोता से कभी भी मान, प्रतिष्ठा, धन की भावना नहीं करनी चाहिए। मान, प्रतिष्ठा, धन की भावना करनेवाला, भगवान की जल से पूजा नहीं कर सकता; इसलिए पात्र जीवों को मान, प्रतिष्ठा, धन की भावना छोड़कर, जल से भगवान की पूजा करनी चाहिए।

7. जिस प्रकार समुद्र अपने में मुर्दे को नहीं रखता, किन्तु बाहर निकाल देता है; उसी प्रकार ज्ञानसमुद्र आत्मा की दृष्टि जिस जीव को हुई है, वह भी अपने में अचेतन मोह -रागादिभावों को रखता नहीं, किन्तु उसको बाहर निकाल देता है, तभी जल से भगवान की पूजा की — ऐसा कहा जा सकता है।

8. देखो, जल से हमें शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार जल, स्वच्छ है; उसी प्रकार हमारी आत्मा भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से शुद्ध हो, द्रवीभूत हो, नम्र हो; तभी हमारा जल चढ़ाना सार्थक है। जन्म, जरा, मृत्यु के नाश के लिए, अमर पद पाने के लिए जल चढ़ाता हूँ — वास्तव में जल चढ़ाना तभी सार्थक है, जबकि जैसे जल ऊपर गिरने से मैल नीचे आ जाता है; उसी प्रकार अनादि काल का मिथ्यात्व दूर हो जावे, तभी जल से पूजा, अर्थात् 'ॐ ह्रीं देव शास्त्र गुरुभ्यो मिथ्यात्वमल विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा' सार्थक है। कहा है कि —

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहिं पाया॥
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिये, मिथ्या मल धोने आया हूँ॥

अहो! समस्त पदार्थों को जानने की शक्ति आत्मा में सदैव विद्यमान है, उसकी प्रतीति करनेवाला जीव धर्मी है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

इस... पुण्य और पाप में अन्तर नहीं है - ऐसा जो नहीं मानता, वह मोहाच्छादित होता हुआ, घोर अपार संसार में परिभ्रमण करता है (क्योंकि पुण्य-पाप, दोनों आत्मा का धर्म नहीं और शुद्धोपयोग - शक्ति का तिरस्कार करनेवाले हैं)।

- आचार्य कुन्दकुन्द

2. चन्दन

1. गरम उबलते हुए तेल में यदि नारियल डाला जाए तो तत्काल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और जलकर खाक हो जाता है और उसी उबलते हुए तेल में जरा-सा बावना चन्दन डाल दिया जावे तो उसी समय वह शीतल हो जाता है। यदि हमारा हृदय भी बावना चन्दन के समान शीतल हो, तब ही हम चन्दन से पूजा करने के अधिकारी हैं।

2. नमि नाम का राजा था, उसके शरीर में दाह-ज्वर उत्पन्न हो गया, उसके उपचार के लिए वैद्यों ने बावना चन्दन का लेप बताया। रानियों ने चन्दन घिसना शुरु किया, रानियों के हाथ जेवर-कंगनों से भरे होने के कारण बड़ी तेज ध्वनि होने लगी, क्योंकि रानियों ने चन्दन घिसना शुरु कर दिया था। तेज ध्वनि होने के कारण राजा के सिर में दर्द हो गया और उसने कहा — इतने जोर की आवाज के कारण मेरा सिर फटा जा रहा है, इसे बन्द करो। रानियों ने सोचा कि दाहज्वर के कारण लेप करना जरूरी है, उन्होंने अपने-अपने हाथों में एक-एक सुहाग चूड़ी रखकर, तमाम जेवर-कंगन निकालकर रख दिये और पुनः चन्दन घिसना शुरु कर दिया। कुछ देर बाद राजा की नींद खुली और कहा, क्या चन्दन घिसना बन्द कर दिया? उन्होंने कहा - नहीं महाराज! हमने एक-एक सुहाग की चूड़ी हाथ में रखकर, बाकी जेवर उतारकर चन्दन घिसना शुरु रखा; इस कारण आवाज बन्द है।

नमि राजा को विचार आया — अहो! अहो! जहाँ एक है, वह आनन्द है और जहाँ अनेक है, वहाँ खलबलाहट है। जहाँ देखो, एक ही सुन्दर है! कहा है—

एकत्व निश्चय गत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में।
उससे बनें बंधन कथा, जू विरोधिनी एकत्व में॥
है सर्व श्रुत-परिचित-अनुभूत, भोग बंधन की कथा।
पर से जुदा एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना॥

— ऐसा विचार आते ही स्वरूप में स्थिरता प्रतीत होते ही जंगल की राह ली, और भावलिंगी मुनिपद प्राप्त किया। नमि राजा के समान हमें एकत्व-विभक्त अपनी आत्मा का निर्णय करके, अपनी पर्याय में दाहरूपी ज्वर है, उसे नष्ट करना है, तभी चन्दन चढ़ाना सार्थक है।

3. चन्दन का इच्छुक पुरुष, जब चन्दन लेने जंगल में जाता है तो वह

अपने साथ गरुड़ या मोर को ले जाता है। मोर या गरुड़ के टहुकार की आवाज के सुनते ही, चन्दन पर लिपटे हुए अजगर और साँप भाग जाते हैं। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष, गरुड़ या मोर को साथ में न ले जावे तो वह चन्दन को प्राप्त नहीं कर सकता; उसी प्रकार अनादि काल से मिथ्यात्वरूपी अजगर, राग-द्वेषरूपी साँप, चन्दन के समान शीतल आत्मा के ऊपर लिपटे हुए हैं। यदि जीव अपने ज्ञायकस्वभाव का टंकार मारे तो मिथ्यात्व राग-द्वेषरूपी अजगर-साँप सब स्वयं भाग जाते हैं। हमारा चन्दन से पूजा करना तभी सार्थक है, जबकि हमको अपने ज्ञायकस्वभाव का पता हो, तब संसार ताप विनाशनाय चन्दन चढ़ाना सार्थक होता है। अपने को जाने बिना अनन्त बार चन्दन चढ़ाया, किन्तु वह व्यर्थ गया।

आत्मा में सर्वज्ञशक्ति है, उस शक्ति का विकास होने पर अपने में सर्वज्ञता प्रगट होती है, किन्तु आत्मा की शक्ति का विकास, पर का कुछ कर दे - ऐसा नहीं होता।

4. **आधि** (मन के विकल्पों के साथ एकत्वबुद्धि); **व्याधि** (शरीरादि के साथ एकत्वबुद्धि) और **उपाधि** (परपदार्थ के साथ एकत्वबुद्धि) - ये त्रिविध ताप हैं। इन तीनों के साथ एकत्वबुद्धि छोड़कर, अपने ज्ञायकस्वभाव के साथ एकत्व करना, वह समाधि है। जब तक हमारे में यह तीन ताप रहेंगे, तब तक हम चन्दन से पूजा करने के अधिकारी नहीं हैं; इसलिए इन तापरहित मेरी आत्मा का स्वभाव है — ऐसा श्रद्धान-ज्ञान और रमणता करें, तभी भगवान की चन्दन से पूजा की।

5. चन्दन को कूड़ा के ढेर पर रखा जावे, उसको घिसा जावे, जलाया जावे, तब भी वह अपने सुगन्धमयी स्वभाव को छोड़ता नहीं है तथा उसको काटनेवाली कुल्हाड़ी को भी वह सुगन्धित बना देता है — ऐसा चन्दन का स्वभाव है; वैसे ही आत्मा को कैसा भी प्रतिकूल संयोग प्राप्त होवे, तब भी उनको अपने ज्ञायकस्वभाव को नहीं छोड़ना चाहिए। चन्दन से पूजा करते समय हमारे में ऐसा भाव आ जावे, तब तो चन्दन से यथार्थ पूजा की — ऐसा कहा जा सकता है।

6. **घृष्टं घृष्टं पुनरपि, पुनश्चन्दनं चारू गंधम्।**
कृष्टं कृष्टं पुनरपि, पुनः स्वादु चैवेक्षु दण्डम्॥
दग्धं दग्धं पुनरपि, पुनः कांचनं कान्त वर्णम्।
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिर्विकृति, र्जायते नोत्तमानाम्॥

चन्दन को जितनी बार घिसो, उतनी-उतनी वह सुगन्धी देता है। हे आत्मा! तुम्हें चन्दन के समान कोई घिसता तो नहीं, फिर तुम अपने ज्ञायकस्वभाव को छोड़कर, क्यों पर का, शुभाशुभभावों का आश्रय लेता है ? नहीं लेना चाहिए।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

इसलिए चन्दन से शिक्षा प्राप्त कर हमें अपना ज्ञायकस्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए, तभी चन्दन से पूजा सार्थक कही जा सकती है।

7. एक आदमी था, उसके घर में बहुत पुरानी मैली गन्दी सी लकड़ी पड़ी थी, वह थी चन्दन की, लेकिन उसे मालूम नहीं था। वह लकड़ी घर पर पड़े-पड़े उसको अच्छी नहीं लगती थी परन्तु खुशबू देती थी। उस आदमी ने उठाकर उस लकड़ी को कूड़े के ढेर पर फैंक दिया, थोड़ी देर बाद आकर देखा, वह लकड़ी वहाँ पर भी खुशबू फैला रही है। उस आदमी को बड़ा गुस्सा आया और लकड़ी को उठाकर अग्नि में डाल दिया, जलते-जलते भी उसकी खुशबू चारों तरफ फैल गयी। उसी प्रकार देखो, हे आत्मा! चन्दन के समान एक तरफ घर पर डालना, कूड़े पर डालना तथा चूल्हे में जला देना, तुम्हारे साथ नहीं होता है, जबकि चन्दन को एक तरफ फैंकने पर, कूड़े पर डालने पर तथा आग में रख देने पर भी वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है; इसी प्रकार हे आत्मन्! तुम्हें अपने ज्ञायकस्वभाव को नहीं छोड़ना चाहिए। यदि हम अपने ज्ञायकस्वभाव को समझे, तभी हम चन्दन से पूजा करने के अधिकारी हैं।

8. चन्दन को कुल्हाड़ी से काटो तो वह उस कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना देता है, तब हे आत्मा! तुम्हें चन्दन के समान कोई काटता तो नहीं है, तब फिर तुम अपने ज्ञायकस्वभाव को क्यों छोड़ते हो? अपने ज्ञायकस्वभाव को ना छोड़े, तभी चन्दन से पूजा करना सार्थक है।

9. चन्दन जलाने पर भी खुशबू देता है। हे आत्मा! तुम्हें चन्दन के समान कोई जलाता तो नहीं, तब फिर तुम अपने ज्ञायकस्वभाव को क्यों छोड़ते हो? यदि अपने स्वभाव को न छोड़े तो चन्दन से पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है?

10. गन्ने को कोल्हू में पीलते हैं तो भी वह मीठा रस देता है। हे आत्मा! तुम्हें गन्ने के समान कोई कोल्हू में पेलता तो नहीं है, फिर तुम क्यों आकुलित होते हो? आकुलित होनेवाला चन्दन से पूजा करे — ऐसा नहीं हो सकता है। आकुलतारहित मेरी आत्मा का स्वभाव है — ऐसा जाने, तभी चन्दन से पूजा करना सार्थक है।

11. गन्ने के रस को औटाओ तो गुड़ बन जाता है, औटाने पर भी अपने मीठे स्वाद को नहीं छोड़ता। हे आत्मा! तुम्हें कोई रस की तरह औटाता तो नहीं, फिर तुम अपने ज्ञायक परमात्मा को क्यों छोड़ते हो? चन्दन से पूजा करना तभी सार्थक है, जबकि अपने में मीठा स्वाद (अतीन्द्रिय आनन्द) आवे।

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कदाचित् तत्त्वनिश्चय करने का उपाय विचारे, वहाँ अभाग्य से कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का निमित्त बने तो अतत्त्वश्रद्धान पुष्ट हो जाता है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

12. सोने को जितनी बार तपाओ, उसमें शुद्धि की ही वृद्धि होती है। हे आत्मा! सोने के समान तुम्हें कोई तपाता तो नहीं, फिर तुम अपने स्वभाव को क्यों छोड़ते हो? अपने स्वभाव को छोड़नेवाला, चन्दन से पूजा करने का अधिकारी नहीं; इसलिए हे आत्मा! अपने स्वभाव को पहिचान कर चन्दन से पूजा कर।

13. छह द्रव्यों की पर्यायें अपने-अपने में (उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्) होती हैं। संसार का कोई भी पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है, जब अपने को ऐसा श्रद्धान हो जावे, तभी 'संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा' कहना सार्थक है। कहा है —

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु अपने अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु, चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।

3. अक्षत

1. देखो! कमोद में से सफेद चावल निकलता है, उसमें छिलका, रतास, और सफेद चावल। इसी प्रकार हमारी आत्मा ने अनादि काल से अपनी मूर्खता के वशीभूत औदारिकशरीर आदि नोकर्म; द्रव्यकर्मरूपी छिलके के साथ, तथा भावकर्मरूपी रतास के साथ एकत्वबुद्धि की है। जब तक यह जीव इनकी भेदविज्ञान नहीं करता, अर्थात् जिस प्रकार जानता है कि चावल खाने योग्य है, छिलका और रतास नहीं; उसी प्रकार आत्मा ज्ञायकस्वभावी है स्वयं और अपनी आत्मा के अलावा समस्त पुद्गलादि संयोगरूप छिलका है। दया, दान, पूजा, क्रोध, मान, माया, लोभादि शुभ-अशुभभाव, सब रतास हैं; मैं तो एक ज्ञायकस्वभावी शुद्ध चेतन आत्मा हूँ; पर से मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। जब तक जीव ऐसा न जाने, तब तक अक्षत चढ़ाना सार्थक नहीं।

2. देखो! चाहता क्या है? अक्षयपद प्राप्त करना, लेकिन बासमती चावल तो खाने के काम के लिए रखता है और टूटे-फूटे चावल मन्दिर में चढ़ाने को। चाहता है अक्षयपद, यह कैसे हो सकता है? इसलिए अक्षयपद प्राप्त करने के लिए मोह-राग-द्वेषरूपी क्षति अपने में नहीं होनी चाहिए। अपनी आत्मा का परपदार्थों से तथा मोह-राग-द्वेषरूपी भावकर्म से पृथकपने का भान हो, तभी अक्षयपद पाने के लिए अक्षत से पूजा करना सार्थक है।

3. अनादि काल से पर्याय में विकार करता आया है तो भी अपने द्रव्य-गुण

अल्पज्ञपर्याय द्वारा सर्वज्ञता की प्रतीति होती है, किन्तु अल्पज्ञता के आश्रय से सर्वज्ञता की प्रतीति नहीं होती; त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही सर्वज्ञता की प्रतीति होती है।

मङ्गल समर्पण

में किंचित् भी विकार नहीं हुआ। जो लाखों वर्षों में भी गुणों में थोड़ा भी विकार होवे तो अनन्त काल में गुण का सर्वथा नाश हो जावे, लेकिन ऐसा बनता नहीं है। जब स्वभाव में भव नहीं, और भव का भाव (शुभाशुभभाव)नहीं, तब स्वभावदृष्टिवाले को भी भव और भव का भाव नहीं है; इसलिए कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि का भव नहीं बिगड़ता, क्योंकि नरक-तिर्यञ्च में उनको जाना नहीं पड़ता तथा उसका भव बढ़ता भी नहीं, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने के बाद अल्प ही भवों में उसका मोक्ष हो ही जाता है।

याद रखो — पर्याय में बिगाड़ होने पर भी, परमार्थस्वरूप आत्मा तो विकार से कभी भी घाता नहीं जाता है; इसलिए वह अक्षय है। अक्षत से पूजा करते समय, जैसे चावल सफेद और अखण्ड है; उसी प्रकार मेरा स्वभाव भी स्वच्छ और अखण्ड है। यदि इसका भान न हो तो अक्षत से पूजा की ही नहीं। कहा है कि—

उज्ज्वल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु, पर से न लगा हूँ किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगे उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही॥
जड़ पर झुक झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत् अक्षय-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया॥

मानरहित मेरी आत्मा का स्वभाव है — ऐसा जानकर, अक्षय पद पाने के लिए अक्षत चढ़ाता हूँ।

कदाचित् सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र का भी निमित्त बन जाये तो वहाँ उनके निश्चयउपदेश का तो श्रद्धान नहीं करता, व्यवहारश्रद्धान से अतत्त्वश्रद्धानी ही बना रहता है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

4. पुष्प

1. दुनिया में लोहबाण से मानव साधारणतया मर जाता है लेकिन कामदेव के पास कोमल पुष्प का बाण है, वह बाण जिसको लग जावे, वह मर जावे। पुष्प चढ़ाने का तात्पर्य यह है कि मैंने काम को छोड़ दिया, अब मैं कामरूपी पुष्प से घाता नहीं जाऊँगा क्योंकि मैंने अपनी आत्मा को कामबाणरूपी पुष्प से पृथक् जान लिया है, तभी पुष्प से भगवान की पूजा की — ऐसा कहा जाता है।

2. पुष्प की स्थिति क्या है ? विचारो —

रस्ते जातां सुभग दीठुं में, पुष्प अे अेक त्यां तो।
डोलन्तु ते पवन लहरीमां, रमन्तु हतुं ने॥
फेलावन्तु सकल दिश मां, सौरभ स्वात्मनी ने।
अर्पे शोभा स्थल सकल ने, आत्म सौन्दर्यथी ते॥

इस पद में पुष्प की स्थिति क्या है, यह बतलाया है। रास्ते चलते हुए

मुसाफिर ने जंगल में एक बड़ा सुन्दर गुलाब का फूल खिला हुआ देखा। वह फूल सारे जंगल को सौन्दर्य बाँट रहा था और जानेवाले मुसाफिरों को सुगन्ध देता था और पवन की लहरों में डोल रहा था, चलते हुए मुसाफिर ने फूल से पूछा —

दिनकर तणो, अस्त थाता पहलो,
करमावानुं तव नसीव मां, शु नहिं छे लखायुं ?॥

हे फूल! तुम्हारा जीवन बहुत अल्प है, सायंकाल के समय तुम कुम्हला जाओगे, फिर भी तुम इतने हँस रहे हो, डोल रहे हो, प्रसन्न हो रहे हो, सुगन्ध दे रहे हो और वातावरण को सौन्दर्य बाँट रहे हो, इसमें तुम्हारे जीवन का क्या मर्म है ?

फूल उत्तर देता है —

न जीवो प्रश्न अे छे के, केटलुं ज जीव्या तमे।
मात्र अे प्रश्न पूछो के, केवीरीते जीव्या तमे ?

कितना जीवन जिया, यह मत पूछो; किस प्रकार जिया ? यह पूछना चाहिए। हमें पुष्प से शिक्षा लेनी चाहिए कि अल्प या अधिक आयु से क्या मतलब ? अगर किसी की उम्र 8 वर्ष की है, उसमें वह आत्मज्ञान कर ले तो उत्तम है और किसी की उम्र 100 वर्ष की है और आत्मज्ञान नहीं किया तो व्यर्थ है। जैसे, फूल खुशबू देता है और डोलता है; उसी प्रकार हम भी अपने ज्ञायकस्वभाव में डोले / रमणता करे, तब ही भगवान की पुष्प से पूजा की — ऐसा कहना सार्थक है। कामबाण से कभी भी मेरा नाश न हो, तभी पुष्प चढ़ाना यथार्थ कहा जावेगा। मन में कुछ, वचन में कुछ, क्रिया कुछ — ऐसी मायाचाररहित कालुषता नाशकर अपने में स्थिर होऊँ, तभी 'कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा' है। कहा है कि —

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं॥
चिंतन कुछ, फिर सम्भाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ तो, अन्तर का कालषु धोती है॥

5. नैवेद्य (चरु)

1. अनादि काल से आज तक कितना आहार ग्रहण किया, लेकिन भूख शान्त नहीं हुई और अनादि काल से अगणित पदार्थों की इच्छा की, लेकिन रंचमात्र भी तृप्ति हुई नहीं। मेरा स्वभाव, अनाहारी और इच्छारहित है — ऐसा जानकर, अनाहारी पद प्रगट करे, तभी नैवेद्य से भगवान की पूजा की सार्थक है।

अल्पज्ञपर्याय के समय भी, अपने में सर्वज्ञत्वशक्ति होने का जिसने निर्णय किया, उसकी रुचि का जोर अल्पज्ञपर्याय की ओर से हटकर अखण्डस्वभाव की ओर ढल गया है; इसलिए वह जीव 'सर्वज्ञ भगवान का लघुनन्दन' हुआ है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

आशारूपी गड्ढा प्रत्येक अज्ञानी प्राणी में पाया जाता है। विषयों से इच्छा पूर्ण होती नहीं। इसका अभिप्राय तो सर्व कषायों का सर्व प्रयोजन सिद्ध करने का है, वह हो तो वह सुखी हो, परन्तु वह कदापि नहीं हो सकता है; इसलिए अभिप्राय में सर्वदा दु:खी ही रहता है; इसलिए कषायों के प्रयोजन को साधकर दु:ख दूर करके सुखी होना चाहता है, सो यह उपाय झूठा ही है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

2. देखो! भक्तामर पाठ पड़ते हैं, सिद्धचक्र का पाठ करते हैं और माँगते हैं कि हे भगवान! मुझे खूब धन मिले, लड़के ही पैदा हो, तमाम दुनिया में बड़ा कहलाऊँ, सब मेरा मान करे और पद्मनी जैसी मेरी सुन्दर पटरानियाँ हों, मेरे शरीर में किसी भी प्रकार की पीड़ा न हो, पुण्य का संयोग हमेशा बना रहे — ऐसी-ऐसी अभिलाषा करते हैं। विचार करो - कितना अनर्थ है। क्या कभी विचार किया है कि अनादि काल से अगणित पदार्थों की इच्छा की, लेकिन आशा-तृष्णा शान्त नहीं हुई। हे आत्मा! सब विकल्पों को छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकस्वभावी आत्मा का अनुभव कर ले तो तुझे परमपद की प्राप्ति होगी। अज्ञानी जीव, संयोगों की वांछा करता है, वह मूर्खता है। संयोग का सम्बन्ध तो पहले शुभाशुभभाव किया था, उसका फल है। इसमें वर्तमान चतुराई कोई भी कार्यकारी नहीं है। जब तक यह ना जाने कि ज्ञान को देह नहीं तो फिर तुझे आहार की ही जरूरत नहीं पड़ेगी। जब तक ऐसा न जाने, चरु चढ़ाना सार्थक नहीं। अनाहारीपद के लिए चरु चढ़ाता हूँ, लेकिन जब तक अनाहारीपद का अनुभव ना हो, तब तक नैवेद्य से पूजा की — ऐसा नहीं कहा जा सकता है। हम प्रतिदिन बोल जाते हैं — 'क्षुधारोग विनाशनाय चरुम् निर्वपामीति स्वाहा'। किन्तु उसका रहस्य समझते नहीं है। वास्तव में अनाहारी पद प्राप्त करे, तब चरु से पूजा करना यथार्थ कहा जावेगा।

कहा है कि —

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही, वह रिक्त रही।
युग युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
पंचेन्द्रिय मन के षट् रस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ॥

6. दीप

1. एक कमरे में सैकड़ों वर्षों से अन्धेरे में अनेक वस्तुएँ पड़ी हुई होने पर भी, अन्धकार और सब चीजें एकरूप भासती हैं, किन्तु प्रकाश होने पर अनेक चीजें जो एकरूप भासित होती थी, वह प्रत्येक पृथक्-पृथक् जैसी जो है, वैसी ही दिखायी देने लगती है; उसी प्रकार अज्ञानी जीव, अनादि काल से मिथ्यात्वरूपी महान अन्धकार के कारण छह द्रव्यों के साथ तथा उनकी गुण-पर्यायों के साथ एकत्वबुद्धि कर रहे हैं। जैसे, मैं दूसरे जीवों का भला बुरा कर सकता हूँ — ऐसा माननेवाला जीव, अनन्त जीवों के साथ एकत्वबुद्धि करता है, यही महान मिथ्यात्व है, जब तक यह मिथ्यात्व न जावे, भगवान की दीप से पूजा सार्थक नहीं है।

2. जो शरीर है, सो मैं हूँ, शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ, शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, बाह्य अनुकूल संयोगों से मैं सुखी, और प्रतिकूल संयोगों से मैं दु:खी, मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं मनुष्य, मैं सुन्दर — ऐसा मानता है। शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओं में अपनापना मानता है इत्यादि मिथ्याअभिप्राय द्वारा जो अपने परिणाम नहीं है, किन्तु सब परपदार्थों के ही परिणाम हैं, उन्हें आत्मा का परिणाम मानता है। जब तक स्वयं, मैं आत्मा, मेरा काम ज्ञाता-दृष्टा है — ऐसा न जाने, तब तक वास्तव में दीप से पूजा करना बनता ही नहीं।

3. शरीर की उत्पत्ति होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर के नाश होने से मैं मर जाऊँगा; धन-शरीरादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से अपने में इष्ट-अनिष्टपना मानना; शरीर की उष्ण अवस्था होने पर, मुझे बुखार आ गया; शरीर में क्षुधा-तृषा होने पर, मुझे क्षुधा-तृषा लग रही है; शरीर कट जाने पर, मैं कट गया; इत्यादि जो अजीव की अवस्थाएँ हैं — जब तक यह जीव ऐसा मानता रहेगा, तब तक दीप से पूजा नहीं हो सकती। मोहान्धकार के नाश करने के लिए दीप से पूजा करता हूँ — ऐसा कहता तो है लेकिन जब तक शरीर की क्रिया, एक-एक परमाणु की क्रिया स्वतन्त्र नहीं भासेगी, तब तक न तो अज्ञान अन्धकार टलेगा और न दीपक से भगवान की पूजा यथार्थ कहलायेगी।

4. दिल्ली से मैं यहाँ आया; अज्ञानी कहता है कि शरीर अपने उपादान से आया लेकिन मैं निमित्त तो हूँ। देखो! अज्ञानी, मिथ्यात्व के कारण स्वयं धर्मद्रव्य, जो कि जीव -पुद्गलों के स्वयं चलते समय निमित्तमात्र होता है, उसको न मानकर, स्वयं धर्मद्रव्य बन गया। दीप, अन्धकार मिटाने के लिए होना चाहिए, उल्टा अन्धकार बढ़ गया; इसलिए धर्मद्रव्य को स्वतन्त्रद्रव्य मानकर, आप उसकी जगह निमित्त न बने, तभी दीप से भगवान की पूजा की — ऐसा कहा जायेगा।

5. शरीर अपने कारण स्थिर होता है लेकिन मिथ्यादृष्टि जीव, मिथ्यात्व के कारण कहता है कि शरीर स्थिर होने में मैं निमित्त तो हूँ — ऐसा माननेवाला अधर्मद्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि करता है। देखो! करना चाहता है मोहान्धकार का नाश; उल्टा स्वयं अधर्मद्रव्य बन जाता है; इसलिए जब तक अधर्मद्रव्य भी एक स्वतन्त्रद्रव्य है, उसकी सत्ता उससे है — ऐसा न माना जावे, तब तक दीप से पूजा करना सार्थक नहीं है।

अभी स्वयं को सर्वज्ञता प्रगट होने से पूर्व 'मेरा आत्मा त्रिकाल सर्वज्ञतारूप परिणमित होने की शक्तिवाला है' - ऐसा जिसने स्वसन्मुख होकर निर्णय किया, वह जीव अल्पज्ञता को, राग को या पर को अपना स्वरूप नहीं मानता; अपने पूर्ण ज्ञानस्वरूप पर ही उसकी दृष्टि होती है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

6. जैसे, यह रेल के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा है, कोई मुसाफिर आता है — बाबूजी! जरा सी जगह दे दो, मैं भी बैठ जाऊँ। कहता है, चल, चल आगे। मुसाफिर चारों तरफ फिरा, किसी ने भी चढ़ने नहीं दिया, गाड़ी ने विशल दे दी — उसने फिर हाथ जोड़कर कहा — बाबूजी! मैं खड़ा-खड़ा चला जाऊँगा। अच्छा-अच्छा आओ, देखो, हमने तुम्हें जगह दे दी... जगह देने में निमित्त है आकाशद्रव्य। अपने आप आकाश बन जावे, तभी वह जगह देने में निमित्त हो सकता है, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। दीप, भगवान के चरणों में चढ़ाना तभी सार्थक है, जबकि आकाशद्रव्य की स्वतन्त्रता स्वीकार की जावे; अन्यथा दीप चढ़ाना सार्थक नहीं है।

7. छह द्रव्यों का परिणमनस्वभाव है, उसमें निमित्त कालद्रव्य है लेकिन इसके बदले में स्वयं को निमित्त माननेवाला, कालद्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि करता है; इस प्रकार अज्ञानी अपने अभिप्राय में कालद्रव्य का नाश मानता है और करता है दीप से पूजा। भाई! कालद्रव्य की स्वतन्त्रता स्वीकार करने पर ही, दीप से पूजा करना सार्थक है।

8. अनादि काल से महान मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकार के कारण छह द्रव्यों की स्वतन्त्रता भासित नहीं होती है और छह द्रव्य अज्ञानी को एकरूप ही दृष्टिगोचर होते हैं। जब तक यह जीव, छह द्रव्यों को एक-दूसरे से पृथक् न माने, क्योंकि आपस में अत्यन्त्याभाव है — ऐसा न जाने तथा एक-एक पर्याय की स्वतन्त्रता नहीं जाने, तब तक भगवान की दीप से पूजा यथार्थतया की — यह नहीं बन सकता।

9. एक कमरे में हजारों वर्षों से अन्धेरा था। क्या उसको दूर करने के लिए फावड़े, मजदूर, फौज, बन्दूक, तोप, बम आदि की आवश्यकता पड़ेगी? आप उत्तर देंगे, कि नहीं, क्योंकि अन्धकार को दूर करने के लिए केवल दियासलाई का प्रकाश ही पर्याप्त है। इसी प्रकार अनादि काल से मिथ्यात्वबुद्धि के कारण, सुख पाने के लिए पर का आश्रय लिया है। पर में कर्तृत्व, ममत्वरूप मिथ्यात्व तथा राग-द्वेषादि शुभाशुभ आस्रवभाव — यह प्रत्यक्ष दुःख देनेवाले हैं, बन्ध के कारण हैं; अज्ञानी जीव उन्हें सुख का कारण जानकर, सेवन करता है। शुभभाव भी बन्ध का ही कारण है, आस्रव है। अज्ञानी जीव धन, योग्य स्त्री-पुत्रादि का संयोग होने से रति करता है; रोग, निन्दा, निर्धनता, पुत्र वियोगादि होने से अरति करता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान से यथावत् श्रद्धान और जानना हो, तब इष्ट-अनिष्ट बुद्धि मिटे, तब कषायजन्य पीड़ा दूर हो, निराकुल होने से महासुखी हो; इसलिए सम्यग्दर्शनादिक ही यह दुःख मिटाने का सच्चा उपाय है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

पुण्य-पाप दोनों बन्धन-कर्ता हैं। स्वयं को जाने बिना, सुख की इच्छा से जो-जो शुभभाव किये, वे सब आस्रव-बन्ध का कारण ही हैं, इन सबको अज्ञानी मानता है संवर, निर्जरा का कारण, यही मिथ्यात्व है। सुख पाने के लिए एकमात्र उपाय अपने परम पारिणामिकभाव का आश्रय लेना ही है, तभी आकुलता, इच्छा, झंझटरहित अपने स्वभाव का अनुभव हो, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, तब 'मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा', कहना सार्थक है।

10. देखो! दीपक है, उसके सामने सोना रखो तो क्या उसकी ज्योति बढ़ जावेगी, या कोयला रखो तो क्या उसकी ज्योति मन्द हो जावेगी? कभी भी ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि दीपक का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है; इसी प्रकार हमारे सामने अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो, ये सब हमारे ज्ञान का ज्ञेय हैं; मेरे ज्ञानस्वभाव में यह कुछ भी बिगाड़ -सुधार नहीं कर सकते। चैतन्य दीपक के सामने अनन्तानन्त प्रतिकूलता होने पर भी, उसकी स्व-पर प्रकाशकता में कुछ भी हानि नहीं होती — ऐसा अनुभव हुए बिना, दीप से पूजा करना बनता ही नहीं है; इसलिए अपने स्व-परप्रकाशक स्वभाव को पहिचानकर, दीप से भगवान की पूजा करनी चाहिए।

11. अज्ञानी जीव, संयोगों में फेरफार करना चाहता है लेकिन भाई! संयोगों में तो संसार का कोई जीव, चाहे वह तीर्थङ्कर क्यों न हो, जरा भी फेरफार नहीं कर सकता। (अपने में) फेरफार करने का एकमात्र उपाय तो यह है कि अपने में संयोगीभाव न करना और संयोगीभाव तभी उत्पन्न नहीं होंगे, जबकि अपने असंयोगी ज्ञायकस्वभाव को समझ लेवे। इसलिए असंयोगी आत्मतत्त्व को समझने से तो संयोगीभाव उत्पन्न ही नहीं होगा और संयोगीभाव उत्पन्न न होवे तो संयोग भी नहीं रहेगा, तभी भगवान की दीप से पूजा करना सार्थक है।

12. देखो! जिस तरह दीपक में जब तक स्नेह (तेल) रहता है, तब तक जलता रहता है, तेल के समाप्त होने पर दीपक बुझ जाता है; उसी प्रकार आत्मा में जब तक मिथ्यात्व राग-द्वेषरूपी स्नेह (तेल) रहता है, तब तक अज्ञानी दुःखी होता रहता है और चारों गतियों में कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहता है। सम्यग्दर्शन होने पर ही मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष का नाश हो जाता है। यदि दीप से पूजा करते समय अज्ञान-अन्धकार का नाश नहीं हुआ तो भगवान को दीप चढ़ाया ही नहीं।

आत्मा, पर का ग्रहण-त्याग करता है अथवा पर में फेरफार करता है - ऐसा जो मानता है, वह जीव, आत्मा की शक्ति को, सर्वज्ञदेव को या जैनशासन को नहीं मानता; वह सचमुच जैन नहीं है।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

13. दीपक जिस प्रकार बाह्य पदार्थ की असमीपता में अपने स्वरूप से ही प्रकाशित होता है; उसी प्रकार बाह्य पदार्थ की समीपता में भी अपने स्वरूप से ही प्रकाशित होता है। अपने स्वरूप से ही प्रकाशित दीपक को, घट-पटादि बाह्य पदार्थ किंचित् भी विक्रिया उत्पन्न नहीं करते हैं; उसी प्रकार अपने स्वरूप से ही जाननेवाले आत्मा को, वस्तुस्वभाव से ही विचित्र परिणति को प्राप्त — ऐसे मनोहर व अमनोहर शब्दादि बाह्य पदार्थ, किंचित् भी विक्रिया उत्पन्न नहीं करते है। आत्मा, दीपक की भाँति पर के प्रति सदा ही उदासीन है। इस प्रकार दीपक की तरह, अपने आत्मा को भी जाने, तभी दीप से भगवान आत्मा की पूजा की।

14. जैसे, अग्नि में तीन मुख्य गुण हैं। पाचक, प्रकाशक और दाहक। अग्नि पकनेयोग्य सब पदार्थों को पका देती है; अग्नि का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है; इसलिए वह स्व और पर को प्रकाशित करती है तथा दाहक होने के कारण, सब दाह्य (जलने योग्य) पदार्थों को जला देती है। उसी प्रकार आत्मा में तीन मुख्य गुण हैं। सम्यग्दर्शन पाचक है; सम्यग्ज्ञान, स्व-पर प्रकाशक है; और सम्यग्चारित्र सब शुभाशुभभावों जला देता है; इसलिए दाहक है। जीव अपनी आत्मा में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को प्रगट न कर ले, तब तक दीप से भगवान की पूजा की, वह सार्थक नहीं होता।

15. दीपक को तेल आदि की आवश्यकता होती है, और तेज पवन के झोंकों से बुझ भी जाता है लेकिन रत्नदीपक को स्वयं प्रकाशित होने के कारण, तेल आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती है और पवन का भारी से भारी तूफान चले तो भी वह बुझ नहीं जाता; उसी प्रकार चैतन्यदीपक स्वयं प्रकाशित होने के कारण, उसको किसी भी बाह्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं है तथा कितनी भी प्रतिकूलता आवे तो भी उसके ज्ञानप्रकाश का नाश नहीं कर सकते। दीप चढ़ाना तभी सार्थक है, जबकि हम अपने चैतन्यरत्न दीपकरूपी ज्ञायक आत्मा का सहजरूप से अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करें, तभी हमने दीप से भगवान की पूजा की।

कहा भी है कि —

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु, चिर व्याप्त भयंकर अंधियारा।
श्रुत दीप बुझा है करुणानिधि, बीती नहिं कष्टों की कारा॥
अतएव प्रभो! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ॥

आकुलता घटना-बढ़ना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नहीं; कषायभावों के घटने-बढ़ने के अनुसार है। आकुलता का घटना-बढ़ना रागादिक कषाय घटने-बढ़ने के अनुसार है तथा परद्रव्यरूप सामग्री के अनुसार सुख-दुःख नहीं है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

अज्ञान कहो, मोहान्धकार कहो, पर के साथ एकत्वबुद्धि कहो, मिथ्यात्व कहो, पुण्य के साथ एकत्वबुद्धि कहो — यह सब से भयंकर पाप हैं; इससे रहित अपनी आत्मा का अनुभव ही दीप चढ़ाना है।

7. धूप

1. हम रोज बोल जाते हैं — 'अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा' — लेकिन कर्म क्या है ? उसका कार्य क्या है ? आत्मा क्या है ? उसका कार्य क्या ? आत्मा अष्ट कर्मों को नाश करता है, यह कथन निश्चय का है या व्यवहार है ? जब तब जीव के निश्चय-व्यवहार का, उपादान-निमित्त का, कर्ता-कर्मादि षट्कारक का, चार अभाव का, ज्ञेय-ज्ञायक आदि के सम्बन्धों का ज्ञान नहीं होता, तब तक धूप से भगवान की पूजा की, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जब तक किस की पूजा और किसलिए ? — इसका ज्ञान न हो, तब तक भगवान की धूप से पूजा की — यह कैसे कहा जा सकता है ? कभी भी नहीं। इसलिए प्रत्येक प्राणीमात्र को प्रथम परीक्षा द्वारा कुदेव-कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोड़कर, अरिहन्त देवादि का श्रद्धान करना चाहिए तथा जीवादि सात तत्त्वों के नाम लक्षण सिखने चाहिए और कम से कम हेय-उपादेय तत्त्वों की परीक्षा करना चाहिए। त्यागने योग्य मिथ्यात्व-रागादिक तथा ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक स्वरूप जानना और निमित्त-नैमित्तिक आदि सम्बन्धों को जानना चाहिए, तभी भगवान की धूप से पूजन की — ऐसा कहा जा सकेगा।

2. जैसे, अग्नि में धूप को चढ़ाते हैं, धूप के चढ़ाने से धुआँ ऊपर उड़ जाता है और धूप सुगन्ध देती है। उसी प्रकार धूप के क्षेपण करते हुए हमारे में जो अनादि काल से परद्रव्य में कुछ करने की और कराने की बुद्धि है कि कर्म मुझे संसार में चक्कर कटाता है, पुण्यभाव अच्छा है — ऐसी बुद्धि नष्ट हो जावे, तभी धूप से पूजा की कहलाया जायेगा। देखो रोजाना पूजा में बोलते हैं — 'मिस धूम करम जर जाहिं' यदि धूप से पूजा करते समय कम से कम नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म से पृथकपने का अनुभव ना हुआ तो धूप से भगवान की पूजा नहीं की है। जो एक बार धूप से पूजा कर ले और फिर उसको पर कर्मादि कुछ करे - ऐसा बनता ही नहीं।

3. धूप चढ़ाते हुए अनादि काल से जो हमारी पर्याय में विकारीपना आ रहा है, वह दूर हो जाना चाहिए, तभी 'विभावपरिणति विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति

अहो! मैं तो ज्ञान हूँ; सारा जगत् ज्यों का त्यों अपने-अपने स्वरूप में विराज रहा है और मैं अपने ज्ञानतत्त्व में विराजमान हूँ तो फिर कहाँ राग और कहाँ द्वेष ? राग-द्वेष कहीं है ही नहीं। मैं तो सबका ज्ञाता -सर्वज्ञता का पिण्ड हूँ; मेरे ज्ञानतत्त्व में राग-द्वेष हैं ही नहीं - ऐसा धर्मी जानता है।

स्वाहा' - कहलाता है। कहा भी है —

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती जड़ केरी॥
यों भावकरम या भावमरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध अनल से प्रभु, पर गंध जलाने आया हूँ॥7॥

8. फल

1. पहले खेत को जोतकर, साफ करके, जमीन को पोला बनाया जाता है; उसमें पानी देने के बाद, जब बीज बोाया जाता है, तब वृक्ष होता है, फिर वृक्ष पर फल आता है; उसी प्रकार जीव में इतनी बात तो होनी चाहिए कि शास्त्र में जो बात लिखी है, उसे प्रमाण माने और अपनी समझ में न आवे, उसे असत्य न कहे और देव-गुरु-शास्त्र की जो आज्ञा हो, उसे ध्यानपूर्वक सुने, विचारे तो यह खेत को जोतकर साफ करने के समान है। पर की कर्ताबुद्धिरूप मिथ्यात्व एवं पुण्य, वास्तव में संसार का कारण है और पुण्य से धीरे-धीरे धर्म होगा — ऐसा मानना महान घोर अज्ञानता है, ऐसा स्वीकार करे, तब खेत में पानी देने के समान है। यह जीव अनादि काल के मिथ्यात्वरूपी भूत को दूर कर, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करे तो यह बीज बोने के समान है। अपनी आत्मा में विशेष स्थिरता करके चारित्ररूपी मोक्ष की प्राप्ति करे तो वह फल के समान है, तब 'मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपमीति स्वाहा' की यथार्थता है।

2. हे भगवान! मैंने अनादि काल से पुण्य से धर्म माना तथा बाह्य क्रिया में सुन्दर -सुन्दर फलों के चढ़ाने से धर्म माना, अब मैं उस खोटी बुद्धि को नाश करने के लिए और सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिए फल चढ़ाता हूँ — ऐसा जाने, तभी फल से भगवान की पूजा की।

3. जब देवों को अमृत की इच्छा हुई, तब उन्होंने समुद्र में पर्वत रखा और उसका मन्थन करने लगे, तब उन्हें महान कीमती रत्न प्राप्त हुए, लेकिन उनसे वह सन्तुष्ट नहीं हुए और तब भी समुद्र का मन्थन करते रहे, तब उन्हें हलाहल जहर प्राप्त हुआ, उससे भी वह भयभीत नहीं हुए। जब तक उन्हें अमृत की प्राप्ति नहीं हुई, तब तक उन्होंने आराम नहीं किया, क्योंकि निश्चित वस्तु की प्राप्ति के बिना, धीर-पुरुष विराम नहीं लेते। उसी प्रकार हमें अमृतरूपी मोक्ष की प्राप्ति करनी है, जब तक वह न मिले, तब तक शुभभाव वा अनुकूल संयोगों में सन्तुष्ट नहीं होना

बाह्य सामग्री से किञ्चित् सुख-दुःख नहीं है।
सुखी-दुःखी होना इच्छा के अनुसार जानना; बाह्य कारण के आधीन नहीं।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

चाहिए तथा प्रतिकूलता से जरा भी डगमगाना नहीं चाहिए, तभी 'मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपमीति स्वाहा' सार्थक कहा जायेगा। कहा भी है —

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़ककर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी॥8॥

9. अर्घ्य

प्रश्न : अर्घ्य का अर्थ क्या है ?

उत्तर : दो अर्थ हैं — 1. पूजा की सामग्री, 2. कीमती वस्तु।

1. मैं भगवान को अष्ट द्रव्यरूपी अर्घ्य (सामग्री) से पूजता हूँ।

2. कीमती वस्तु - अमूल्यपद पाने के लिए कीमती वस्तु अर्पण करता हूँ। देखो, माँगते है अनर्घपद, और भगवान की पूजा की सामग्री में, बासमति चावल तो घर में खाने के काम आवेगा, मोटा टूटा जरा सा चावल, जरा सी नैवेद्य, बादाम-लोंग दो चार; देखो, देते हैं थोड़ी कीमत की चीज और चाहते हैं अमूल्यपद। अरे भाई! जरा विचार करो, जैसे कोई मनुष्य पाँच रुपया लेकर हीरा खरीदने जावे तो क्या उसे हीरा मिलेगा? कभी भी नहीं मिलेगा। इसलिए अमूल्यपद, अर्थात् मोक्षपद प्राप्त करने के लिए कीमती वस्तु अर्पण करनी चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु दुनिया के लोगों ने जिसे अपनी मिथ्या कल्पना से कीमती मान रखा है — ऐसा जो शुभभाव है, हे जिनेन्द्र भगवान! मैं इसको भी अर्पण करता हूँ और जहाँ से कभी भी वापस न आना पड़े — ऐसे अमूल्यपद की प्राप्ति के लिए आपके चरणों में अर्घ्य चढ़ाता हूँ।

3. अनादि काल से अपनी मूर्खतावश अज्ञानियों ने-मुँह से शब्द निकला, हाथ से सामग्री चढ़ा दी, इसी को पूजा मान रखा है। अरे भाई! याद रख; अपने आत्मस्वभाव को समझे बिना, यथार्थ पूजा नहीं कहलाती; इसलिए सबसे पहले छह द्रव्य, सात तत्त्वों, निमित्त -नैमित्तिक सम्बन्ध, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार और अनेकान्त-स्याद्वाद आदि को जाने बिना, यथार्थ पूजा नहीं हो सकती; इसलिए पण्डित दौलतरामजी ने कहा है—

तास ज्ञान का कारन, स्वपर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ॥

हे जीव! ज्ञानी तुझे तेरा आत्मवैभव बतलाते हैं। अपने ज्ञान में ही स्थिर रहकर एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने - ऐसा ज्ञानवैभव तुझमें विद्यमान हैं। यदि अपनी सर्वज्ञशक्ति का विश्वास करे तो कहीं भी परिवर्तन करने की बुद्धि दूर हो जाए।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

तातै जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करी जै।
संशय विभ्रम मोहत्याग, आपो लख लीजै॥
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥
'दौल' समझ सुन-चेत सयाने, काल वृथा मत खौवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥

अर्घ के विषय में कहा है कि —

क्षण भर निज रस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तव विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अरहन्त अवस्था है॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु, निजगुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अरहन्त अवस्था पाऊँगा॥9॥

॥ इति पूजा विधि॥

पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से क्रोधादिक होते हैं; जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हो, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक उत्पन्न नहीं होते, तब सच्चा धर्म होता है।

- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल